UNIVERSAL LIBRARY
OU_186695
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 301.424 ग19 ब्र

Accession No. G.H. 2718

Author गांधी, मो. क.

Title ब्रह्मचर्य 1952

This book should be returned on or before the date last marked below.

सत्साहित्य प्रकाशन-

ब्रह्मचर्य

-संयम तथा ब्रह्मचर्य-संबंधी विचार-

दूसरा भाग

मोहनदास करमचंद गांधी

●

पुस्तक भेंट के निमित्त है

१९६२

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

Checked 1965

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद की सहमति से

तीसरी बार : १९६२

मूल्य

एक रुपया

मुद्रक
प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस
ब्रह्मपुरी, अजमेर

प्रकाशकीय

गांधीजी के लिखे संयम तथा ब्रह्मचर्य-विषयक सन् १९३८ तक के लेख 'अनीति की राहपर' तथा 'ब्रह्मचर्य' (भाग १) नामक पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके हैं। बाद के इस भाग में दिये जा रहे हैं। इन तीनों पुस्तकों में गांधीजी के ब्रह्मचर्य-संबंधी लगभग सभी लेख आगए हैं। पाठकों के सुभीते के लिए ये तीनों पुस्तकें संयुक्त रूप में 'गांधी-साहित्य' के नवें भाग में 'आत्म-संयम' के नाम से प्रकाशित कर दी गई हैं।

इन पुस्तकों में जो विचार प्रकट किये गए हैं, वे स्थायी महत्त्व के हैं। आशा है, पाठक उन्हें ध्यान-पूर्वक पढ़ेंगे और उनसे लाभ उठावेंगे।

—मंत्री

विषय-सूची

१. ब्रह्मचर्य ७
२. ब्रह्मचर्य का स्पष्टीकरण १०
३. लड़की को क्या चाहिए ? १२
४. चरित्र-बल ग्रावश्यक है १४
५. एक ही शत्रु १७
६. दृश्य तथा ग्रदृश्य दोष १६
७. एक युवक की दुविधा २१
८. साहित्य में गंदगी २३
६. ग्रार्यसमाज ग्रौर गंदा साहित्य २६
१०. मेरा जीवन २७
११. स्त्री-धर्म क्या है ? ३२
१२. पुरुष ग्रौर स्त्रियां ४०
१३. एक विधवा की कठिनाई ४१
१४. गृहस्थ-ग्राश्रम ४३
१५. भरोसे की सहायता ४५
१६. ब्याह ग्रौर ब्रह्मचर्य ४७
१७. बहनों की दुविधा ५०
१८. मैंने कैसे शुरू किया ? ५२
१६. ब्रह्मचर्य की रक्षा ५४
२०. ईश्वर कहां है ग्रौर कौन है ? ५७
२१. नाम-साधना की निशानियां ५६
२२. एक उलझन ६२

२३. पुराने विचारों का बचाव ६४
२४. मुश्किल को समझना ६७
२५. एक विद्यार्थी की उलझन ७१
२६. शंकाओं के जवाब ७४
२७. ब्रह्मचर्य द्वारा मातृभावना का साक्षात्कार ७७

ब्रह्मचर्य

: १ :

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य की जो व्याख्या मैंने की है, वह अब भी क़ायम है। अर्थात् जो मनुष्य मन से भी विकारी होता है, समझना चाहिए कि उसका ब्रह्मचर्य स्खलित होगया है। जो विचार में निर्विकार नहीं, वह पूर्ण ब्रह्मचारी कभी नहीं माना जा सकता। चूंकि अपनी इस व्याख्यातक मैं नहीं पहुंच सका, इसलिए अपनेको मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं मानता। पर अपने आदर्श से दूर होते हुए भी, मैं यह मानता हूं कि जब मैंने इस व्रत का आरंभ किया तब मैं जहांपर था, उससे आगे बढ़ गया हूं। विचार की निर्विकारता तबतक कभी आती ही नहीं, जबतक कि 'पर' का दर्शन नहीं होता। जब विचार के ऊपर पूरा क़ाबू हो जाता है, तब पुरुष स्त्री को और स्त्री पुरुष को अपने में लय कर लेती है। इस प्रकार के ब्रह्मचारी के अस्तित्व में मेरा विश्वास है, पर ऐसा कोई ब्रह्मचारी मेरे देखने में नहीं आया। ऐसा ब्रह्मचारी बनने का मेरा महान प्रयास जारी अवश्य है। जबतक यह ब्रह्मचर्य प्राप्त नहीं हो जाता, मनुष्य उतनी अहिंसात्मक, जितनी कि उसके लिए शक्य है, पहुंच नहीं सकता।

ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक मानी जानेवाली बाड़ को मैंने हमेशा के लिए आवश्यक नहीं माना है। जिसे किसी बाह्य रक्षा की जरूरत है वह पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं। इसके विपरीत, जो बाड़ को तोड़ने के ढोंग से प्रलोभनों की खोज में रहता है, वह ब्रह्मचारी नहीं, किंतु मिथ्याचारी है।

ऐसे निर्भय ब्रह्मचर्य का पालन कैसे हो? मेरे पास इसका कोई अचूक

उपाय नहीं, क्योंकि मैं पूर्ण दशा को नहीं पहुंचा हूं। पर मैंने अपने लिए जिस वस्तु को आवश्यक माना है, वह यह है :

विचारों को खाली न रहने देने की खातिर निरंतर उन्हें शुभ चिंतन में लगाये रहना चाहिए। रामनाम का इकतारा तो चौबीसों घंटे, सोते हुए भी, श्वास की तरह स्वाभाविक रीति से, चलता रहना चाहिए। वाचन हो तो सदा शुभ, और विचार किया जाय, तो अपने कार्य का ही। कार्य पारमार्थिक होना चाहिए। विवाहितों को एक-दूसरे के साथ एकांत-सेवन नहीं करना चाहिए, एक कोठरी में एक चारपाई पर नहीं सोना चाहिए। यदि एक दूसरे को देखने से विकार पैदा होता हो, तो अलग-अलग रहना चाहिए। यदि साथ-साथ बातें करने में विकार पैदा होता हो, तो बातें नहीं करनी चाहिए। स्त्रीमात्र को देखकर जिसके मन में विकार पैदा होता हो, वह ब्रह्मचर्य-पालन का विचार छोड़कर अपनी स्त्री के साथ मर्यादापूर्वक व्यवहार रखे; जो विवाहित न हो, उसे विवाह का विचार करना चाहिए। किसीको सामर्थ्य से बाहर जाने का आग्रह नहीं रखना चाहिए। सामर्थ्य से बाहर प्रयत्न करके गिरनेवालों के अनेक उदाहरण मेरी नजर के सामने आते रहते हैं।

जो मनुष्य कान से वीभत्स या अश्लील बातें सुनने में रस लेते हैं, आंख से स्त्री की तरफ़ देखने में रस लेते हैं, वे सब ब्रह्मचर्य का भंग करते हैं। अनेक विद्यार्थी और शिक्षक ब्रह्मचर्य-पालन में जो हताश हो जाते है, इसका कारण यह है कि वे श्रवण, दर्शन, वाचन, भाषण आदि की मर्यादा नहीं जानते, और मुझसे पूछते हैं, "हम किस तरह ब्रह्मचर्य का पालन करें?" प्रयत्न वे ज़रा भी नहीं करते। जो पुरुष स्त्री के चाहे जिस अंग का सविकार स्पर्श करता है, उसने ब्रह्मचर्य का भंग किया है, ऐसा समझना चाहिए। जो ऊपरी मर्यादा का ठीक-ठीक पालन करता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य सुलभ होजाता है।

आलसी मनुष्य कभी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। वीर्य-संग्रह करनेवाले में एक अमोघ-शक्ति पैदा हो जाती है। उसे अपने शरीर और मन को निरंतर कार्यरत रखना ही चाहिए। अतः हरेक साधक को ऐसा सेवा-कार्य खोज लेना चाहिए कि जिससे उसे विषय-सेवन करने

के लिए रंचमात्र भी समय न मिले।

साधक को अपने आहार पर पूरा क़ाबू रखना चाहिए। वह जो कुछ खाये, वह केवल औषधि रूप में शरीर-रक्षा के लिए, स्वाद के लिए कदापि नहीं। इसलिए मादक पदार्थ, मसाले वगैरा उसे खाना ही नहीं चाहिए। ब्रह्मचारी मिताहारी नहीं, किंतु अल्पाहारी होना चाहिए। सब अपनी मर्यादा बांध लें।

उपवासादि के लिए ब्रह्मचर्य-पालन में अवश्य स्थान है। पर आवश्यकता से अधिक महत्त्व देकर जो उपवास करता और उससे अपने को कृतकृत्य हुआ मानता है, वह भारी गलती करता है। निराहारी के विषय उस बीच में क्षीण भले ही होजायं, पर उसका रस नष्ट नहीं होता। शरीर को नीरोग रखने में उपवास बहुत सहायक है। अल्पाहारी भी भूल कर सकता है, इसलिए प्रसंगोपात्त उपवास करने में लाभ ही है।

"क्षणिक रस के लिए मैं क्यों तेजहीन होऊं? जिस वीर्य में प्रजोत्पत्ति की शक्ति भरी हुई है, उसका पतन क्यों होने दूं, और इस तरह ईश्वर की दी हुई बख्शीस का दुरुपयोग करके मैं ईश्वर का चोर क्यों बनूं? जिस वीर्य का संग्रह कर मैं वीर्यवान् बन सकता हूं, उसका पतन करके वीर्यहीन क्यों बनूं?" इस विचार का मनन यदि साधक नित्य करे, और रोज ईश्वर कृपा की याचना करे, तो संभवतः वह इस जन्म में ही वीर्य पर क़ाबू प्राप्त कर ब्रह्मचारी बन सकता है। इसी आशा को लेकर मैं जी रहा हूं।

'हरिजन-सेवक',

२८-१०-३९

: २ :

ब्रह्मचर्य का स्पष्टीकरण

मोण्टाना (अमरीका) मे कुमारी मैबल ई० सिम्पसनने 'हरिजन' के संपादक को लिखा है :

"मैं आपके पत्र की प्रशसा करती हूं। यह ठीक है कि आकार में यह बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन इसमे जो कुछ रहता है उससे इस अभाव की पूर्ति हो जाती है। गांधीजी ने संतति-निग्रह के विषय में सदा की तरह स्पष्टता-पूर्वक जो लेख लिखा है, वह मुझे बहुत पसंद आया। अगर वह बीस बरस पहले, जबकि संतति-निग्रह से घृणा की जाती थी, और अब जबकि इसका बहुत जोर है, अमरीका आते तो वह यह जान जाते कि नैतिक दृष्टि मे यह कितना पतन-कारक है। लेकिन वह किसीको इस बात का विश्वास नहीं करा सकेंगे, क्योंकि यह मनुष्य को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी वंचित कर देता है, जिसमे इस पथ पर चलनेवालों के लिए उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बुद्धिपूर्वक किसी बात का निर्णय करना असंभव हो जाता है। इस संबंध में हिंदुस्तान ने अगर पश्चिम का अनुकरण किया तो निश्चय ही वह अपने दो अत्यंत अमूल्य और सुंदर रत्नों को खो देगा—एक तो छोटे बच्चों के प्रति प्रेम, और दूसरा माता-पिता के प्रति श्रद्धा। अमरीका ने इन दोनों को गंवा दिया है—और, इनका उसे कुछ पता भी नहीं। क्या आप ब्रह्मचर्य के अर्थ का स्पष्टीकरण कर सकते हैं? मुझसे इसके बारे में पूछा गया है। हालांकि मेरे मन में इसकी कुछ कल्पना तो है, लेकिन वह इतनी निश्चित नहीं है कि मैं दूसरों को समझाने का प्रयत्न करूं।"

पाठक और पाठिकाएं इस साक्षी का जो-कुछ मूल्य आंकें वह आंक सकते हैं। मगर मैं कहता हूं कि संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का प्रयोग

करने के विरुद्ध ऐसी साक्षी उन लोगों की साक्षी से कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है जो इनके प्रयोग से फ़ायदा उठाने का दावा करते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इससे बच्चों की उत्पत्ति रुकती है, इस रूप में तो इसके फायदे से कोई इनकार नहीं करता। कहा सिर्फ यह जाता है कि इसके प्रयोग से जो नैतिक हानि होती है वह बेहिसाब है। कुमारी सिम्पसन ने हमें ऐसी हानि का माप बताया है।

अब रही ब्रह्मचर्य के अर्थ की बात। सो उसका मूलार्थ इस प्रकार बताया जा सकता है—वह आचरण कि जिससे कोई व्यक्ति ब्रह्म या परमात्मा के संपर्क में आता है।

इस आचरण में सब इंद्रियों का संपूर्ण संयम शामिल है। इस शब्द का यही सच्चा और सुसंगत अर्थ है।

वैसे आमतौर पर इसका अर्थ सिर्फ जननेंद्रिय का शारीरिक संयम ही लगाये जाने लगा है। इस संकीर्ण अर्थ ने ब्रह्मचर्य को हलका करके उसके आचरण को प्रायः बिल्कुल असंभव कर दिया है। जननेंद्रिय पर तबतक संयम नहीं हो सकता जबतक कि सभी इंद्रियों का उपयुक्त संयम न हो, क्योंकि वे सब अन्योन्याश्रित हैं। मन भी इंद्रियों में ही शामिल है। जबतक मन पर संयम न हो, खाली शारीरिक संयम चाहे कुछ समय के लिए प्राप्त भी होजाय, पर उससे कुछ हो नहीं सकता।

'हरिजन सेवक',
२०-६-३६

*

: ३ :

लड़की को क्या चाहिए ?

एक महिला लिखती हैं :

"आपका 'ऐसी मुसीबत जिससे बच सकते हैं' शीर्षक लेख मुझे अधूरासा लगता है। माता-पिता अपनी लड़कियों की शादी करने का क्यों आग्रह रखते हैं और फिर उसके लिए ऐसी अकथनीय मुसीबतें क्यों उठाते हैं ? अगर वे अपनी लड़कियों को भी लड़कों की तरह ऐसी शिक्षा देने लग जायं जिससे कि वे भी स्वतंत्रतापूर्वक अपनी आजीविका कमाने लगें तो उन्हें लड़कियों के लिए वर तलाश करने मे इतना कष्ट और चिंताएं न करनी पड़े। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब लड़कियों को अपनी मानसिक उन्नति करने का अवकाश मिल जाता है और वे इज्जत के साथ अपना भरण-पोषण करने लायक हो जाती हैं, तब अगर वे शादी करना चाहती हैं तो उन्हें अपने लायक वर तलाशने में कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। मेरे कहने का कोई यह अर्थ न लगाए कि लड़कियों को आजकल की तथोक्त उच्च शिक्षा देने की मैं सिफारिश कर रही हूं। मैं जानती हूं कि वह तो हजारों लड़कियों के लिए अप्राप्य ही है। मेरा तो मतलब यह है कि लड़कियों को उपयोगी ज्ञान के साथ-साथ किसी ऐसे धंधे की शिक्षा भी दी जाय जिससे उन्हें यह पूरा विश्वास हो जाय कि वे अपने माता-पिता या पति की निरी आश्रिता बनकर नही रहेंगी, बल्कि अगर मौका आया तो संसार मे अपने पैरों पर भी खडी रह सकती हैं। हां, मैं तो ऐसी भी कुछ लड़कियों को जानती हूं, जो पति-द्वारा छोड़ दिये जाने पर आज फिर अपने पतियों के साथ सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं, क्योंकि परित्यक्ता की दशा में उन्हें सद्भाग्य से स्वाश्रयी बनने तथा अन्य उपयोगी

शिक्षा पाने का अवसर मिल गया था। विवाहयोग्य कन्याओं के माता-पिताओं की कठिनाइयों का विचार करते समय, आप सवाल के इस पहलू पर भी ज़ोर दें तो बड़ा अच्छा हो।"

पत्र भेजनेवाली महिला ने जो भाव प्रकट किये है, उनका मैं हृदय से समर्थन करता हूं। मुझे तो एक ऐसे पिता के मामले पर विचार करना था, जिसने अपने-आपको बड़ी मुसीबत में डाल दिया था—इसलिए नहीं कि उनकी लड़की अयोग्य थी, बल्कि इसलिए कि वे और शायद उनकी लड़की भी वर का चुनाव अपनी जाति के छोटे-से दायरे में ही करना चाहते थे। इस मामले में तो लड़की का सुयोग्य होना ही एक विघ्न साबित हो रहा था। अगर लड़की निरक्षर होती तो हरकिसी युवक के अनुकूल अपनेको बना लेती। पर चूंकि खुद सुशिक्षिता थी, इसलिए स्वभावतः उसके लिए उतने ही सुयोग्य वर की भी ज़रूरत थी। समाज में दुर्भाग्यवश, किसी लड़की से शादी करने के लिए कीमत के बतौर रुपये मांगना नीचता और निश्चित रूप से बुराई नहीं मानते। कालेज की अंग्रेजी शिक्षा को खामखा इतना अधिक कृत्रिम महत्व प्रदान कर दिया गया है। उसमें तो न जाने कितने पाप छिपे रहते हैं। जिन वर्गों के युवकों में लड़कियों से शादी करने के प्रस्ताव मंजूर करने पर कीमतें मांगी जाती है, बड़ा अच्छा होता अगर उनमें सुयोग्यता की परिभाषा बनाने में कुछ अधिक अक्ल से काम लिया जाता। ऐसा होता तो लड़कियों के लिए वर ढूंढने की चिंता अगर पूरी तरह न भी दूर होती तो कम-से-कम काफी घट जाती। इसलिए पाठकों से मैं सिफारिश करूंगा कि वे इन पत्र-प्रेषक महिला के विचारों पर ज़रूर गौर करें। पर साथ ही, जातपांत की इन महान् हानिकर बाड़ों को भी तोड़ने की उन्हें मैं ज़ोरों से सलाह दूंगा। ये बाड़े तोड़ने पर चुनाव के लिए एक विशाल क्षेत्र खुल जायगा और यह पैसे ठहराने की बुराई बहुत हद तक अपने-आप कम हो जायगी।

'हरिजन सेवक',
५-६-३६

: ४ :

चरित्र-बल आवश्यक है

अच्छी तरह हरिजन-सेवा करने के लिए, यही नही बल्कि गरीब, अनाथ, असहायों की सब तरह की सेवा के लिए यह जरूरी है कि लोक-सेवक का अपना चरित्र शुद्ध और पवित्र हो। चरित्रबल अगर न हो, तो ऊंची-से-ऊंची बौद्धिक और व्यवस्था-संबंधी योग्यता की भी कोई क़ीमत नहीं। वह तो उलटे अड़चन भी बन सकती है, जबकि शुद्ध चरित्र के साथ-साथ ऐसी सेवा का प्रेम भी हो तो उससे आवश्यक बौद्धिक और व्यवस्था-सबंधी योग्यता भी निश्चित ही बढ़ जायगी या पैदा हो जायगी। हरिजन-सेवा में लगे हुए दो अच्छे प्रसिद्ध कार्यकर्त्ताओं की शोचनीय चरित्र-हीनता के दो अत्यंत दुःखद उदाहरण मेरे सामने आये है, जिनपर से कि मैं यह बात कर रहा हूं। इन दोनों को जो लोग जानते थे वे सब इन्हें शुद्ध चरित्र का और संदेह से परे मानते थे। लेकिन इन दोनों ने ऐसा आचरण किया है, जो, जिस पद पर ये आसीन थे, उसके बिल्कुल अनुपयुक्त है। इसमें कोई शक नहीं कि वे अपने हृदय के अंधेरे कोने में ज़हरीले सांप की तरह छिपी हुई विषय-वासना के शिकार हुए हैं। लेकिन हम तो मर्त्यलोक के साधारण जीव ठहरे, दूसरों के मन में क्या है यह हम नहीं जान सकते। हम तो मनुष्यों को सिर्फ़ उनके उन कामों से ही जान सकते हैं, और हमें उन्हींपर से उनके बारे में कुछ निर्णय करना चाहिए, जिन्हें कि हम देख और पूरा कर सकते हैं। ये दो मामले तो ऐसे हुए हैं कि उनके लिए हरिजन-सेवक-संघ के कार्यकर्त्ता बने रहना असंभव होगया है। यह कोई सज़ा नही है; लेकिन उनके खुद के लिए भी न सही, तो भी हरिजन-सेवक-संघ और उसके उद्देश्य की रक्षा के

लिए उनका उससे हट जाना ज़रूरी है। मैं यह बात बड़ी अच्छी तरह कह सकता हूं कि संघ को उनके खिलाफ़ कोई कारंवाई करने की आवश्यकता नही होगी; क्योंकि वे कार्यकर्त्ता संघ से, वल्कि मैं आशा करता हूं कि सार्वजनिक प्रवृत्ति से, खुद ही हट जायगे। यह ठीक है कि सेवा करने की किसी को मनाही नहीं है। जिस आदमी का भयंकर रूप से नैतिक पतन होगया हो, अगर फिर भी वह सावधान हो जाय, तो वह जहां भी चाहे सेवा कर सकता है। खुद उसका सुधर जाना ही कुछ कम बात नहीं है, वह भी समाज को एक सेवा ही होगी। लेकिन ऐसी सेवा, जो खुद-ब-खुद होती है और प्रायः गुप्त रूप से की जाती है, उससे बिल्कुल भिन्न है, जो किसी संस्था मे रहकर उसकी सब सुविधाओं का उपयोग करते हुए की जाती है। ऐसे सार्वजनिक जीवन में फिर से प्रवेश पाने के लिए तो यह बहुत जरूरी है कि सर्वसाधारण का पूरा विश्वास फिर से प्राप्त किया जाय।

आजकल के सार्वजनिक जीवन मे एक ऐसी प्रवृत्ति है कि जबतक कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता अपने जिम्मे के किसी व्यवस्थाकार्य को अच्छी तरह पूरा करता है, उसके चरित्र के सबंध में कोई ध्यान नहीं दिया जाता। कहा यह जाता है कि चरित्र पर ध्यान देना हरेक का अपना निजी काम है, हमें उसमें दखल देने की कोई ज़रूरत नहीं, हालांकि मैं जानता हूं कि यह बात अक्सर कही जाती है, लेकिन इस विचार को ग्रहण करना तो दूर, मैं इसे ठीक भी कभी नहीं समझ सका हूं। जिन संस्थाओं ने व्यक्तियों के निजी चरित्र को विशेष महत्त्व नहीं दिया, उनमें उससे कैसे-कैसे भयंकर परिणाम सामने आये, इसका मुझे पता है। बावजूद इसके पाठकों को यह जान लेना ज़रूरी है कि इस समय मैं जो बात कह रहा हू वह सिर्फ़ हरिजन-सेवक-संघ-जैसी उन संस्थाओ के ही बारे में कह रहा हू, जो करोड़ों मूक लोगों के हित की संरक्षक बनना चाहती हैं। मगर मुझे इसमें कोई शक नही है कि ऐसी किसी भी सेवा के लिए शुद्ध और निष्कलंक चरित्र का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। हरिजन-सेवा अथवा खादी या ग्रामोद्योग के काम में लगे हुए कार्यकर्त्ताओं के लिए तो उन बिल्कुल सीधे-सादे, निर्दोष और अज्ञान स्त्री-पुरुषों

के संपर्क में आना बहुत जरूरी है, जो बौद्धिक दृष्टि से संभवत: बच्चों के समान होंगे। अगर उनमें चरित्र-बल न होगा तो अंत में जाकर जरूर उनका पतन होगा और उसके फलस्वरूप जिस उद्देश्य के लिए वे काम कर रहे है, उसे उस कार्य-क्षेत्र मे और भी धक्का लगेगा, जिसमें कि सर्वसाधारण उनसे परिचित हैं। ऐसे मामलों के अनुभव से प्रेरित होकर ही मैं यह बात लिख रहा हूं। यह प्रसन्नता की बात है कि ऐसी सेवा में जितने लोग लगे हुए हैं उनकी संख्या के लिहाज से ऐसे इक्के-दुक्के ही हैं। लेकिन बीच-बीच में ऐसे मामले प्राय: होते रहते है। इसलिए जो संस्थाएं और कार्यकर्त्ता ऐसे सेवा-कार्यो मे लगे हुए है, उन्हें सार्वजनिक रूप में सावधान करने और चेतावनी देने की जरूरत है। कार्यकर्त्ता तो इसके लिए जितने भी अधिक सतर्क और सावधान रहे उतना ही कम है।

'हरिजन सेवक',

७-११-३६

: ५ :

एक ही शत्रु

मनुष्यमात्र का एक ही शत्रु है, एक ही मित्र है, और वह है आप खुद ही। यह मेरा वचन नहीं, सर्वशास्त्रों का है। जब मनुष्य अपने-आपको धोखा देता है, तब वह आप अपना शत्रु बन जाता है। जब वह अपने अंतर में रहनेवाले परमेश्वर की गोद में अपने-आपको छोड़ देता है, तब वह खुद अपना मित्र बन जाता है। यह लिखने का प्रयोजन है चरित्र पतन के वे दोनों मामले, जिनका कि मैंने उल्लेख किया है और मेरी दृष्टि में आनेवाले इसी प्रकार के और भी छोटे-मोटे क़िस्से। इन मामलों में मैं ज्यों-ज्यों गहरा उतरता जाता हूं, त्यों-त्यों देखता हूं कि उन व्यक्तियों ने अपने-आपको धोखा दे रखा है। मेरी जांच-पड़ताल का परिणाम क्या आता है, यह तो आगे मालूम होगा।

दोष तो हम सभी करते है। लेकिन जब हम दोष मे से निर्दोषता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, तब हम और अधिक नीचे गिर जाते हैं।

एक पुरुष को दो स्त्रियां भाई के समान समझती है, तपस्वी के रूप में, शुद्ध सेवक के रूप में उसे देखती हैं, शिक्षक या गुरु मानती हैं; उन्हींके साथ उसका पतन होता है, और पीछे उनमें से एक के साथ वह शादी कर लेता है। इसे मैं अपना व्यभिचार छिपाने की युक्ति मानता हूं। इस प्रकार के संबंध को विवाह का नाम देना विवाह की मानो फ़जीहत करना है। मैं जानता हूं कि आजकल ऐसा बहुत जगह हो रहा है। पाप का गुणाकार होने से उसकी वृद्धि होती है, वह कुछ पुण्यरूप नहीं कहा जा सकता। सारा जगत पाप करता है इसलिए वह रूढ़ भले ही होजाय, पर अगर पाप होगा तो वह पाप ही रहेगा, ऐसा नियम पाप समझे जानेवाले सभी कृत्यों को लागू नहीं होगा, यह मैं जानता हूं। मेरी दृष्टि में तो जो वस्तु परंपरा से

पाप मानी जा रही है और जिसे आज समाज पाप मानता है, उस प्रकार के ये क़िस्से हैं ।

शिक्षकों के अपनी शिष्याओं के साथ गुप्त संबंध हो जायं, और पीछे उन संबंधों में से किसी एक को विवाह का रूप दे दिया जाय, तो इससे ऐसा संबंध पवित्र नहीं बन सकता। जिस प्रकार सगे भाई-बहन के बीच में पति-पत्नी का संबंध संभव नहीं, उसी प्रकार शिक्षक और शिष्या के बीच होना चाहिए, यह मेरा दृढ़ अभिप्राय है। अगर इस सुवर्णनियम का पूर्ण पालन न हो, तो परिणाम यह होगा कि शिक्षण-संस्था टूट जायगी; कोई लड़की शिक्षकों से सुरक्षित न रह सकेगी। शिक्षक का पद ऐसा है कि लड़कियां और लड़के उसके नीचे निरतर रहते है; शिक्षक के वचन को वेद का वचन मानते हैं। अत: शिक्षक जो स्वतंत्रता लेता है, उसके विषय में उन्हें कोई शंका नहीं होती। इसलिए जहा शरीर से भिन्न आत्मा का संमान है, वहां इस प्रकार के संबंध असह्य समझे जाते हैं, और समझे जाने चाहिए। जब ऐसा कोई संबंध 'हरिजन-सेवक-संघ'-जैसी सस्थाओं मे होजाय, तब उससे होनेवाला बुरा असर बहुत दूर तक पहुंचता है और उस कार्य को हानि पहुंचाता है ।

कुछ लोगों को प्रकट रूप मे पाप स्वीकार करते संकोच होता है, कुछ को स्वीकार करते हुए झिझक होती है। धर्म तो पुकार-पुकार कर कहता है : अपने किये हुए राई के समान दिखनेवाले दोषो को पर्वत के समान देखो। यदि हृदय से उन्हें पूर्णत: स्वीकार करोगे, तो जैसा मैला कपड़ा मैल दूर हो जानेसे ही शुद्ध होता और शुद्ध दीखता है, उसी तरह तुम भी शुद्ध हो जाओगे और दिखोगे। और तुम्हारा प्रकट स्वीकार और पश्चाताप भविष्य में पाप से बचने में ढाल रूप सिद्ध होगा।

'हरिजन सेवक',
५-१२-३६

: ६ :

दृश्य तथा अदृश्य दोष

एक खादीसेवक लिखते है :

"आप कार्यकर्त्ताओं के सदाचार पर बहुत ज़ोर देते आ रहे हैं। आपने अधिकतर कामवासना मे बचने को ही बहुत महत्व दिया हैं, जो कि ठीक भी है। जब कभी इस विषय मे किसी कार्यकर्त्ता की गिरावट का उदाहरण आपके सामने आया है, आपके हृदय को सख्त चोट लगी है और आपने उसका उल्लेख 'हरिजन' मे भी किया है। लेकिन क्या सदाचार का अर्थ केवल परस्त्री के प्रति कामवासना न रखना ही है? क्या झूठ बोलना, ईर्ष्या व द्वेष रखना सदाचार के विरुद्ध नहीं है? चूंकि हमारा समाज भी इन बातों को इतनी घृणा से नही देखता, जितनी घृणा से वह परस्त्री के साथ संबंध को देखता है; इसलिए शायद आप भी इन बातों पर अधिक ज़ोर नहीं देते। पर ये बुराइयां उससे कम नहीं, बल्कि बाज हालात में तो ये कहीं अधिक हानिकारक होती हैं।

"वैसे तो पापों की तुलना ही क्या! परंतु हमारे आजकल के समाज में तो इन चीज़ों को अधिक बुरी निगाह से नहीं देखा जाता। जब एक ज़िम्मेदार मुख्य कार्यकर्त्ता एक दिन में चार-पांच सफेद झूठ बोले और किसीपर झूठे इल्जाम लगाये, तो क्या हृदय विदीर्ण नहीं हो जाता? क्या इससे अपनेको व समाज को वह हानि नही पहुंचाता?"

प्रश्न यह अच्छा है। दोषों में ऊंच-नीच की भावना नहीं होनी चाहिए। जहांतक मेरा संबंध है, मैं तो असत्य को सब पापों की जड़ मानता हूं और जिस संस्था में झूठ को बर्दाश्त किया जाता है, वह संस्था कभी समाज-सेवा नहीं कर सकती; न उसकी हस्ती भी ज़्यादा दिनों तक रह

सकती है। लेकिन मनुष्य झूठ का प्रयोग जब करता है, तब उस झूठ पर अनेक प्रकार के रंग चढ़ते हैं। वह एक प्रकार का व्यभिचार है। झूठ के ही रूप में झूठ शायद ही प्रकट होता है। व्यभिचार तीन दोष करता है। झूठ का दोष तो करता ही है, क्योंकि उसके पाप को छुपाता है। व्यभिचार को दोष मानता ही है और दूसरे व्यक्ति का भी पतन करता है।

जितने और दोषों का वर्णन लेखक ने किया है, वे सब गुणवाचक हैं। इनको हम न देख सकते हैं, न शीघ्र पकड़ सकते हैं। जब वे मूर्तिमंत होते हैं, अर्थात् कार्य में परिणत होते हैं, तभी उनका विवेचन हो सकता है, उनके दूर करने का उपाय भी तभी संभावित होता है। एक मनुष्य किसीसे द्वेष करता है। उसका कोई परिणाम जबतक नहीं आता, तबतक न उसकी कोई टीका की जाती है न द्वेपी मनुष्य का सुधार किया जा सकता है। लेकिन जब द्वेषवश कोई किसीको हानि पहुंचाता है, तब उसकी टीका हो सकती है और वह दंड के योग्य भी बनता है। बात यह है कि समाज में और क़ानून में भी व्यभिचार काफ़ी बर्दाश्त किया जाता है, अगरचे व्यभिचार से समाज को हानि अधिक पहुंचती है। चोर को सख्त सजा मिलती है और चोर बेचारा समाज से बहिष्कृत हो जाता है। और व्यभिचारी सफेदपोश सब जगह देखने में आते हैं, उन्हें दंड तो मिलता ही नहीं। क़ानून उनकी उपेक्षा करता है। मेरा विश्वास है कि करोड़ों की सेवा करनेवाली संस्था में जैसे चोरों को, गुडों को स्थान होना ही नहीं चाहिए, ठीक इसी तरह व्यभिचारियों को भी नहीं होना चाहिये।

'हरिजन सेवक',
२७–२–३७

: ७ :

एक युवक की दुविधा

एक विद्यार्थी पूछता है :

"मैट्रिक पास या कालेज में पढ़नेवाला युवक अगर दुर्भाग्य से दो-तीन बच्चों का पिता होगया हो, तो उसे अपनी आजीविका प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए ? और उसकी इच्छा के विरुद्ध पच्चीस बरस पहले ही उसकी शादी करदी जाय तो उसे, उस हालत में, क्या करना चाहिए ?"

मुझे तो सीधे-से-सीधा जवाब यह सूझता है कि जो विद्यार्थी अपनी स्त्री और बच्चों का पोषण करने के लिए क्या करना चाहिए, यह न जानता हो, अथवा जो अपनी इच्छा के विरुद्ध शादी करता हो, उसकी पढ़ाई व्यर्थ है। लेकिन इस विद्यार्थी के लिए तो वह भूतकाल का इतिहास-मात्र है। इस विद्यार्थी को तो ऐसे उत्तर की जरूरत है, जो उसको सहायक हो सके। उसने यह नहीं बताया कि उसकी जरूरतें कितनी हैं ? वह अगर मैट्रिक पास है तो अपनी कीमत ज्यादा न आंके और साधारण मजदूरों की श्रेणी में अपनेको रक्खेगा तो उसे अपनी आजीविका प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं आवेगी। उसकी बुद्धि उसके हाथ-पैर को मदद करेगी, और इस कारण जिन मजदूरों को अपनी बुद्धि का विकास करने का मौका नहीं मिला है, उनकी अपेक्षा वह अच्छा काम कर सकेगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि जो मजदूर अंग्रेजी नहीं पढ़ा वह मूर्ख होता है। दुर्भाग्य से मज़दूरों को उनकी बुद्धि के विकास में कभी मदद नहीं दी गई, और जो स्कूलों में पढ़ते हैं, उनकी बुद्धि कुछ तो विकसित होती ही है, यद्यपि उनके सामने जो विघ्न-बाधाएं आती हैं वे इस जगत के दूसरे किसी भाग में देखने को नहीं मिलतीं। इस मानसिक विकास का वातावरण स्कूल-कालेज में पैदा हुए झूठी प्रतिष्ठा के ख़याल

से बराबर हो जाता है। इस कारण विद्यार्थी यह मानने लगते हैं कि कुर्सी-मेज पर बैठकर ही वे आजीविका प्राप्त कर सकते हैं। अतः इस प्रश्नकर्त्ता को तो शरीर-श्रम का गौरव समझकर इसी क्षेत्र में से अपने परिवार के लिए आजीविका प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

और फिर उसकी पत्नी भी अवकाश के समय का उपयोग करके परिवार की आमदनी को क्यों न बढ़ावे ? इसी प्रकार अगर लड़के भी कुछ काम करने-जैसे हों तो उनको भी किसी उत्पादक काम मे लगा देना चाहिए। पुस्तकों के पढ़ने से ही बुद्धि का विकास होता है, यह ख़याल ग़लत है। इसको दिमाग में से निकालकर यह सच्चा खयाल मन में जमाना चाहिए कि शास्त्रीय रीति से कारीगर का काम सीखने से मन का विकास सबसे जल्दी होता है। हाथ को या औज़ार को किस प्रकार मोड़ना या घुमाना पड़ता है, यह क़दम-क़दम पर उम्मीदवार को जब सिखाया जाता है तब उसके मन के सच्चे विकास की शुरुआत होती है। विद्यार्थी अगर साधारण मजदूरों की श्रेणी में अपनेको खड़ा कर लें तो उनकी बेकारी का प्रश्न बिना मेहनत के हल हो सकता है।

अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के विषय में तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि अपनी इच्छा के खिलाफ जबरदस्ती किये जानेवाले विवाह का विरोध करने जितना संकल्प-बल तो विद्यार्थियों को जरूर प्राप्त करना चाहिए। विद्यार्थियों को अपने बल पर खड़ा रहने और अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई भी बात—खासकर ब्याह-शादी—जबरदस्ती किये जाने के हरेक प्रयत्न का विरोध करने की कला सीखनी चाहिए।

'हरिजन सेवक',
२६-१०-३७

: ८ :

साहित्य में गंदगी

त्रावणकोर के एक हाईस्कूल के हेडमास्टर लिखते हैं :

"यह तो आप जानते ही हैं कि त्रावणकोर का राजनैतिक वातावरण इस समय बहुत दुःखपूर्ण होगया है। हाईस्कूल तक के छात्र हड़ताल कर रहे है और दूसरों को स्कूल में जाने से रोक रहे हैं। इन लोगों में कुछ ऐसी भावना काम कर रही है कि आप विद्यार्थियों की, और छात्रों की हड़ताल के पक्ष में हैं। मैं यह पसंद करूंगा कि इस विषय पर आप अपनी राय आम विद्यार्थियों को लिखने की कृपा करें। इससे स्थिति साफ़ हो जायगी।"

मेरा ख़याल है कि विद्यार्थियों और छात्रों की हड़तालों के ख़िलाफ़ मैंने काफ़ी मौक़ों पर लिखा है, बहुत ही कम प्रसंग मैंने छोड़े होंगे। मैं यह मानता हूं कि विद्यार्थियों का राजनैतिक प्रदर्शनों और दलगत राजनीति में हिस्सा लेना बिलकुल ग़लत चीज़ है। इस क़िस्म का जोश उनके गंभीर अध्ययन में हस्तक्षेप करता है, और उन्हें होनहार नागरिकों के रूप में काम करने के अयोग्य बना देता है। अलबत्ता, एक चीज ऐसी ज़रूर है कि जिसके लिए विद्यार्थियों या छात्रों का हड़ताल करना उनका फ़र्ज़ है। लाहौर के 'यूथ्स वेल्फेयर असोसियेशन' के अवैतनिक मंत्री का मुझे एक पत्र मिला है। इस पत्र में अश्लीलता और कामुकता से भरे काफ़ी नमूने पाठ्य-पुस्तकों से उद्धृत किए गए हैं, जिन्हें विभिन्न विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्य-क्रमों में रक्खा है। यह ऐसे गंदे अवतरण हैं कि पढ़ने में घिन मालूम होती है। हालांकि यह पाठ्यक्रम की पुस्तकों में से लिये गए हैं। मैंने जितना भी साहित्य पढ़ा है, उसमें इतनी गंदगी कभी मेरी नज़र से नहीं गुज़री। इन अवतरणों को निष्पक्ष रीति से संस्कृत, फारसी और हिंदी के कवियों की

रचनाओं में से लिया गया है। मेरा ध्यान इस ओर सबसे पहले वर्धा के महिला-आश्रम की लड़कियों ने आकर्षित किया था, और हाल में मेरी पुत्र-वधू ने, जोकि देहरादून के कन्या-गुरुकुल में पढ़ रही है, इन अश्लील कविताओं की तरफ़ मेरा ध्यान खींचा है। उसकी कुछ पाठ्य पुस्तकों में जैसी अश्लीलता भरी हुई है, वैसी कभी उसकी नज़र से नहीं गुज़री थी। उसने मेरी इसमें सहायता चाही। मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिकारियों से इस संबंध में लिखा-पढ़ी कर रहा हूं। पर बड़ी-बड़ी संस्थाएं धीरे-धीरे ही क़दम आगे रखती हैं। लेखकों और प्रकाशकों का स्वार्थ सुधार नहीं होने देता, उनका एकाधिकार आड़े आ जाता है। साहित्य की वेदी तो ख़ास धूप की अधिकारिणी है। मेरी पुत्रवधू ने मुझे यह सुझाया और मैं तुरंत उसके साथ सहमत होगया कि वह अपनी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने की जोखिम ले लेगी, पर अश्लील और कामुकतापूर्ण साहित्य नहीं पढ़ेगी। उसकी यह एक नर्म-सी हड़ताल है, पर है उसके लिए यह बिल्कुल हितकर और पूरी प्रभाव-कारक। पर यह एक ऐसा प्रसंग है जो विद्यार्थियों या छात्रों द्वारा की हुई हड़ताल को न सिर्फ उचित ही ठहराता है, बल्कि मेरी राय में, उनका यह फ़र्ज़ हो जाता है कि ऐसा साहित्य अगर उनके ऊपर जबरन लादा जाय तो उसके ख़िलाफ़ वे विद्रोह भी करें।

किसीको चाहे जो पढ़ने की स्वतन्त्रता देना, यह एक बात है। पर यह बिल्कुल अलग बात है कि युवा लड़के-लड़कियों को ऐसे साहित्य का परिचय कराया जाय, जिससे निश्चय ही उनके काम-विकारों को उत्तेजन मिलता हो, और ऐसी चीज़ों के बारे में वाहियात कुतूहल मन में पैदा हो कि जिनका ज्ञान आगे चलकर उचित समय पर और ज़रूरी हदतक उन्हें ज़रूर हो जायगा। बुरा साहित्य तब कहीं अधिक हानि पहुंचाता है जबकि वह निर्दोष साहित्य के रूप में हमारे सामने आता है और उसपर बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के प्रकाशन की छाप लगी होती है।

विद्यार्थियों की शांतिपूर्ण हड़ताल एक ऐसा तरीक़ा है, जिससे अत्यावश्यक सुधार जल्द-से-जल्द हो सकता है। ऐसी हड़तालों में कोई शोरगुल या उपद्रव नहीं होना चाहिए। सिर्फ इतना काफ़ी होगा कि जिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए आपत्तिजनक साहित्य का अध्ययन आवश्यक हो,

उनका परीक्षार्थी बहिष्कार करदें। अश्लीलता के विरुद्ध विद्रोह करना हरेक शुद्ध मनोवृत्ति वाले विद्यार्थी का कर्त्तव्य है।

उक्त असोसियेशन ने मुझे लिखा है कि मैं कांग्रेसी मंत्रियों से यह अपील करूं कि वे पाठ्यक्रम में से ऐसी पुस्तकों या उन अंशों को जो आपत्तिजनक हैं, हटवा देने के लिये जो भी उपाय संभव हो, वह करें। मैं इस लेख द्वारा सहर्ष ऐसी अपील न केवल कांग्रेसी मंत्रियों, बल्कि सभी प्रांतों के शिक्षा-मंत्रियों से करता हूं। निश्चय ही, विद्यार्थियों की बुद्धि के स्वस्थ विकास में तो सभी एक-सी दिलचस्पी रखते हैं।

'हरिजन सेवक',
१५-१०-३८

: ६ :

आर्यसमाज और गंदा साहित्य

कन्या गुरुकुल देहरादून के श्री धर्मदेव शास्त्री ने और उनके बाद गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य अभयदेव ने मुझे लिखा है कि मैंने अपने 'साहित्य में गंदगी' शीर्षक लेख में जो अपनी पुत्रवधू का उल्लेख किया है, जो कन्या गुरुकुल में अध्ययन कर रही है और जिसने अपनी परीक्षा में की कुछ पाठ्य पुस्तकों की गंदगी के विषय में लिखा था, उसका कहीं-कहीं यह अर्थ लगाया गया है कि आर्यसमाज के अधिकारी इस प्रकार के गंदे साहित्य को प्रोत्साहन देते हैं। इन दोनों ही सज्जनों ने इसका जोरदार खंडन किया है। आचार्य अभयदेव ने मुझे लिखा है कि गुरुकुल तो इस विषय में इतना सतर्क रहा है कि कालिदास-जैसे महाकवियों की रचनाओं के लिए भी उसका यह आग्रह है कि शकुंतला-जैसी प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों के ऐसे संस्करणों का ही अध्ययन उसके विद्यार्थी करें, जिनमें से अश्लीलता के अंश बिल्कुल निकाल दिये गए हों। यह तो बाद की बात है कि गुरुकुल ने अपने विद्यार्थियों को साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं में बैठने की अनुमति दी। सम्मेलन ऐसी पुस्तकों को अपने पाठ्यक्रम में रखना बर्दाश्त कर रहा है, जिनमें गंदे साहित्य को स्थान मिला हुआ है। मैं समझता हूं कि गुरुकुल के अधिकारियों ने सम्मेलन के प्रबंधकों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित किया है और उनसे कहा है कि वे ऐसी पुस्तकों को अपने पाठ्यक्रम में से निकाल दें, जिनमें आपत्तिजनक अंश हों। मुझे आशा है कि जबतक वे परीक्षार्थियों की पाठ्य-पुस्तकों में के गंदे साहित्य के खिलाफ़ छेड़ी हुई इस लड़ाई में सफलता प्राप्त न कर लेंगे, तबतक उन्हें संतोष न होगा।

'हरिजन सेवक'
१६-११-३८

: १० :

मेरा जीवन

'बंबई क्रॉनिकल' में उसके इलाहबाद-स्थित संवाददाता द्वारा प्रेषित नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित हुआ है :

"गांधीजी के बारे में कॉमन्स-सभा में जो बातें फैल रही हैं, उनके संबंध में बड़ी चौंका देनेवाली खबरें प्रकाश में आई हैं। कहा जाता है कि अंग्रेज इतिहासकार श्री एडवर्ड टॉमसन ने, जो हाल ही में इलाहाबाद आये थे, इंग्लैंड में फैली हुई विचित्र मनोवृत्ति पर कुछ रोशनी डाली है। श्री टॉमसन यहां कुछ राजनैतिक नेताओं से भी मिले थे, जिनसे उन्होंने गांधीजी के संबंध में कॉमन्स-सभा में फैली हुई इन तीन बातो के संबंध में कहा बताते हैं—

"१. गांधीजी ब्रिटिश सरकार के साथ बिला किसी शर्त के सहयोग करना चाहते थे।

"२. गांधीजी अब भी कांग्रेस पर प्रभाव डाल सकते है।

"३. गांधीजी के कामुक जीवन के संबंध में कई कहानियां चली थीं। ख़याल यह था कि गांधीजी अब वह संतपुरुष नहीं रहे हैं।

"श्रीटॉमसन का ख़याल है कि गांधीजी के 'कामुक जीवन' के संबंध में जो धारणाएं बनी हैं, वे कुछ मराठी-पत्रों के आधार पर हैं। उन्होने, जहांतक कि मुझे पता है, इसकी चर्चा सर तेजबहादुर सप्रू से की, जिन्होंने इसका खंडन किया। बादमें, उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्री पी० एन० सप्रू से भी यह चर्चा की। उन्होंने भी ज़ोरों के साथ इसका खंडन किया।

"ऐसा जान पड़ता है कि इंग्लैंड से रवाना होने के पहले श्री टॉमसन कॉमन्स-सभा के कई सदस्यों से मिले थे। इलाहाबाद से रवाना होने के पहले श्री टॉमसन ने नेहरूजी की सलाह से, एक पत्र कॉमन्स-सभा के सदस्य

श्री ग्रीनउड के पास भेज दिया था, और इस पत्र में उन्होंने गांधीजी के बारे में फैली हुई कहानियों को बिल्कुल निराधार बताया था।"

श्री टॉमसन ने सेगांव आने की भी कृपा की थी। उन्होंने इस रिपोर्ट को मूलतः ठीक बताया।

तीसरे अभियोग के बारे में कुछ स्पष्टीकरण ज़रूरी है। दो दिन पहले चार-पांच गुजराती भाइयों ने मेरे नाम एक चिट्ठी भेजी, उसके साथ एक समाचार-पत्र था, जिसका एकमात्र उद्देश्य यही जान पड़ता है कि वह मेरे चरित्र को उतना काला चित्रित करे जितना किसी मनुष्य का हो सकता है।

पत्र के शीर्षक के अनुसार उसका उद्देश्य 'हिन्दुओं का संगठन' करना है। मेरे खिलाफ़ जो इल्जाम लगाये गए हैं वे अधिकतर मेरे इक़रारों के आधार पर ही हैं और उन्हें तोड़ा-मरोड़ा गया है। दूसरे कई इल्जामों के साथ कामुकता का इल्जाम सबसे बड़ा है। कहा जाता है कि मेरा 'ब्रह्मचर्य' मेरी कामुकता छिपाने का एक साधन है। बेचारी डॉक्टर सुशीला नैयर को मेरी मालिश करने व मुझे औपचारिक स्नान कराने के अपराध पर जनता की दृष्टि के सामने घसीटकर लाया गया है। ये दो बातें ऐसी हैं, जिनके लिए मेरे आस-पास के व्यक्तियों में वह सबसे अधिक योग्य हैं। उत्सुक व्यक्तियों की जानकारी के लिए यह बतला दूं कि ये काम तनहाई में कभी नहीं किये जाते। ये काम डेढ़ घंटे से भी अधिक देर तक होते रहते हैं, और इसके बीच मैं प्रायः सो जाता हूं, और महादेव प्यारेलाल या दूसरे साथियों के साथ काम भी करता रहता हूं।

जहांतक कि मुझे पता है, इन अभियोगों का आरंभ अस्पृश्यता के विरुद्ध चलाये गए मेरे आंदोलन के साथ हुआ। यह उस समय की बात है, जबकि अस्पृश्यता-निवारण कांग्रेस के कार्यक्रम में शामिल था। मैंने इस विषय पर सभाओं में बोलना आरंभ किया था और हरिजनों के सभाओं व आश्रमों में आने पर ज़ोर देने लगा था। उस समय कुछ सनातनी, जो मेरी सहायता करते और मुझसे मित्रता रखते थे, मुझसे अलहदा होगए, और उन्होंने मुझे बदनाम करने का एक आंदोलन ही आरंभ कर दिया। उसके बाद एक बहुत प्रभावशाली अंग्रेज इस आंदोलन में शामिल होगया।

उसने स्त्रियों के साथ मेरी स्वतंत्रता पर टीका-टिप्पणी की, और मेरे 'महात्मापन' को पापपर्ण जीवन बताया। इस आंदोलन में एक-दो प्रसिद्ध हिंदुस्तानी भी शामिल थे। गोलमेज कान्फ्रेंस के अवसर पर अमरीकन अखबारों ने मेरा बड़ा निर्दय मजाक उड़ाया था। मीराबेन, जो उस समय देखरेख करती थीं, इन मज़ाकों का लक्ष्य बनीं। श्री टॉमसन उन सज्जनों से परिचित हैं, जो इन इल्ज़ामों के पीछे हैं, और जहांतक मैं उनकी बात समझ सका, साबरमती-आश्रम की सदस्या प्रेमाबहन कंटक के नाम लिखी गई मेरी चिट्ठियां भी मेरे पतन को सिद्ध करने के लिए काम में लाई गई हैं। प्रेमाबहन एक ग्रेजुएट महिला और योग्य कार्यकर्तृ हैं। वह ब्रह्मचर्य और इसी प्रकार के दूसरे विषयों पर प्रश्न पूछा करती थीं। मैं उन्हें पूरे जवाब भेजता था। उन्होने यह सोचकर कि ये जवाब सर्व-साधारण के लिए भी उपयोगी होगे, मेरी इजाजत से उन्हें प्रकाशित कर दिया। मैं उन्हे बिल्कुल निर्दोष और पवित्र मानता हूं।

अभी तक मैंने इन इल्जामों को नजरंदाज किया है; लेकिन श्री टॉमसन की बातें और गुजराती संवाददाताओं का आग्रह, जो कहते हैं कि उन्होने इस तरह की निंदा के जो अंश भेजे वे तो मेरे बारे में जो कुछ कहा जा रहा है उसके नमूनेभर हैं, मुझे उनका खंडन करने के लिए बाध्य करते है। मेरे इस जीवन मे कोई गोपनीयता नही है। कमज़ोरियां मुझमें भी हैं ज़रूर। लेकिन अगर कामुकता की ओर मेरा रुझान होता, तो मुझमे इतना साहस है कि मैं उसको क़बूल कर लेता। जब मेरे अंदर अपनी पत्नी तक के साथ विषय-संबंध रखने की अरुचि काफ़ी बढ़ गई और इस संबंध में मैंने अपनी काफ़ी परीक्षा करली तभी, और अच्छाई के साथ देश-सेवा करने के लिए, मैंने १९०६ में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था। उसी दिन से मेरा खुला जीवन शुरू होगया है। सिर्फ़ उस अवसर को छोड़कर, जिसका कि मैंने 'यंगइंडिया' और 'नवजीवन' के अपने लेखों में उल्लेख किया है, और कभी मैं अपनी पत्नी या अन्य स्त्रियों के साथ दरवाज़ा बंद करके सोया या रहा होऊं, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। और वे रातें मेरेलिए सचमुच काली रातें थीं। लेकिन, जैसाकि मैंने बार-बार कहा है, अपने बावजूद ईश्वर ने मुझे बचाया है। मुझमें अगर कोई गुण हो तो मैं उसके श्रेय का अपने लिए

कोई दावा नहीं करता। मेरेलिए तो सब गुणों का दाता वही तारनहार प्रभु है और उसीने अपनी सेवा के लिए सदा मेरी रक्षा की है।

जिस दिन से मैंने ब्रह्मचर्य शुरू किया, उसी दिन से हमारी स्वतंत्रता का आरंभ हुआ है। मेरी पत्नी मेरे स्वामित्व के अधिकार से मुक्त होगई, और मैं अपनी उस वासना की दासता से मुक्त होगया, जिसकी पूर्ति उसे करनी पडती थी। जिस भावना में मैं अपनी पत्नी के प्रति अनुरक्त था, उस भावना में और किसी स्त्री के प्रति मेरा आकर्षण नहीं रहा है। पति के रूप में उसके प्रति मैं बहुत वफ़ादार था और अपनी माता के सामने किसी अन्य स्त्री का दास न बनने की मैंने जो प्रतिज्ञा की थी उसके प्रति भी मैं वैसा ही वफ़ादार था। लेकिन जिस तरह मेरे अंदर ब्रह्मचर्य का उदय हुआ, उसके कारण अदम्य रूप से स्त्रियों को मैं मातृभाव से देखने लगा। स्त्रियां मेरेलिए इतनी पवित्र होगई कि मैं उनके प्रति कामुकतापूर्ण प्रेम का ख्याल ही नहीं कर सकता। इसलिए तत्काल हरेक स्त्री मेरे लिए बहन या बेटी की तरह होगई। फिनिक्स में मेरे आसपास काफी स्त्रिया रहती थीं। उनमें से कई तो मेरी रिश्तेदार ही थीं, जो मेरे कहने से दक्षिण अफ्रीका आई थीं। दूसरी मेरे साथियों या रिश्तेदारों की पत्नियां थीं। वेस्ट-परिवार तथा अन्य अंग्रेज भी इन्हींमें थे। वेस्ट-परिवार में, वेस्ट, उनकी पत्नी और सास इतने व्यक्ति थे। उनकी सास उस छोटी-सी बस्ती की बूढ़ी दादी बन गई थी।

जैसीकि मेरी आदत है, किसी नई और अच्छी बात को मैं अपनेतक ही सीमित नहीं रख सकता। इसलिए मैंने सभी बाशिंदों को ब्रह्मचर्य ग्रहण करने के लिए कहा। सभीने उसे पसंद किया और कुछ यह व्रत लेकर इस आदर्श के प्रति सच्चे भी रहे। पर मेरा ब्रह्मचर्य उसका पालन करने के लिए बने हुए कट्टर नियमों के बारे में कुछ नहीं जानता। मैंने तो जब जैसी ज़रूरत देखी, उसके अनुसार अपने नियम बना लिये। लेकिन मेरा यह विश्वास कभी नहीं रहा कि ब्रह्मचर्य का उपयुक्त रूप में पालन करने के लिए स्त्रियों के किसी भी तरह के संसर्ग से बिल्कुल बचना चाहिए। जो संयम अपने विपरीत वर्ग के सब संसर्गों से, फिर वह कितना ही निर्दोष क्यों न हो, बचने के लिए कहे वह बलात् संयम है, जिसका कोई महत्त्व नहीं।

इसलिए सेवा या काम काज के लिए स्वाभाविक संसर्गों पर कभी कोई प्रतिबंध नहीं रहा। और मुझे तो दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेज़ व हिंदुस्तानी अनेक बहनों का विश्वास प्राप्त था। और जब दक्षिण अफ्रीका में मैंने भारतीय बहनों को निष्क्रिय प्रतिरोध-आदोलन में भाग लेने के लिए निमंत्रित किया, तो मुझे लगा कि मैं भी उन्हींमें से एक हूं। मुझे इस बात का पता चल गया कि स्त्री-जाती की सेवा के लिए मैं खासतौर से उपयुक्त हूं। इस कहानी को (जोकि मेरेलिए बड़ी रोमांचकारी है) संक्षेप में खत्म करने के लिए मैं कहूंगा कि भारत लौटने पर यहां भी जल्दी ही मैं भारतीय स्त्रियों में हिलमिल गया। मेरेलिए यह एक रुचिकर रहस्योद्घाटन था कि मैं उनके हृदयों तक किस आसानी से पहुंच जाता हूं। दक्षिण अफ्रीका की तरह यहां भी मुसलमान स्त्रियों ने मुझसे कभी परदा नहीं किया। आश्रम में मैं स्त्रियों से घिरा हुआ सोता हूं, क्योंकि मेरे साथ वे अपनेको हर तरह सुरक्षित महसूस करती हैं। मुझे यह भी याद दिला देनी चाहिए कि सेगांव-आश्रम में कोई पोशीदगी नही है।

अगर स्त्रियों के प्रति मेरा कामुकतापूर्ण झुकाव होता तो, अपने जीवन के इस काल में भी, मुझमें इतना साहस है कि मैंने कई पत्नियां रखली होतीं। गुप्त या खुले स्वतंत्र प्रेम में मेरा विश्वास नहीं है। उन्मुक्त प्रेम को मैं तो कुत्तों का प्रम समझता हूं। और गुप्त प्रेम में तो, इसके अलावा, कायरता भी है।

'हरिजन सेवक'
४-११-३६

: ११ :

स्त्री-धर्म क्या है ?

एक बहुत पढ़ी-लिखी बहन का पत्र, कुछ हिस्से निकाल देने के बाद, यहां देता हूं :

"आपने अहिंसा और सत्याग्रह के ज़रिए दुनिया को आत्मा का गौरव दिखा दिया है। मनुष्य के पशु-स्वभाव को जीतने की समस्या इन्हीं दो शब्दों से हल हो सकती है।

"उद्योग के जरिए शिक्षा एक महान कल्पना ही नहीं है, बल्कि हम अपने बच्चों को स्वावलंबी बनाना चाहते हैं तो शिक्षा का एकमात्र सही तरीक़ा भी यही है। आप ही ने यह बात कही है और एक ही वाक्य में शिक्षा की सारी विशाल समस्या हल कर दी है। उसकी तफ़सील तो हालात और तजरुये से ही तय हो सकती है।

"मेरी अर्ज़ है कि स्त्रियों का सवाल भी ज़रूर हल कर दें।

"राजाजी कहते है कि हम स्त्रियों का कोई सवाल ही नहीं है। शायद राजनैतिक माने में न हो। कदाचित्, धंधे के बारे में भी क़ानून द्वारा हमें निश्चित बनाया जा सकता है, अर्थात् सभी पेशे औरत-मर्द सबके लिए समान रूप में खुले कर दिये जा सकते हैं।

"मगर फिर भी हम स्त्री हैं और स्त्री के गुण-दोष पुरुष से भिन्न हैं, इस बात में अंतर नहीं पड़ता। हमें अपने स्वभाव के दोषों को दूर करने के लिए अहिंसा और सत्याग्रह के अलावा कुछ और सिद्धांत भी चाहिए।

"पुरुष की तरह स्त्री की आत्मा भी ऊंचा उठने की कोशिश करती है, मगर जैसे नर को अपनी आक्रमणकारी भावना, काम-वासना और दुःख पहुंचाने की पशु-वृत्ति आदि से छुटकारा पाने के लिए अहिंसा और ब्रह्मचर्य की ज़रूरत है, ठीक उसी तरह नारी को भी कुछ ऐसे उसूलों की आवश्यकता है, जिनसे वह अपने स्वभाव के दोष दूर कर सके, क्योंकि वे दोष पुरुष के

दोषोंसे अलग तरह के हैं और आमतौर पर कहा जाता है कि वे प्रकृतिसे ही स्त्री के साथ लगे हुए हैं। स्त्री होने के कारण ही उसके जो स्वाभाविक गुण-दोष हैं, उसका जिस तरह लालन-पालन और शिक्षण होता है और उसके लिए जैसा वातावरण पैदा हो जाता है वह सब उसके विरुद्ध पड़ता है। और ये चीज़ें, यानी उसका स्वभाव, उसकी तालीम, और उसका वायुमंडल, उसके काम में हमेशा खलल डालते, उसका रास्ता रोकते और आमतौर-पर यह कहने का मौक़ा देते हैं कि 'आख़िर तो औरत ही है ?' जब मैं कहती हूं कि स्त्री होना ही उसके गले का हार होगया है, तो मेरा मतलब यही है।

"मेरे ख़याल से हमारी समस्या ठीक तौर पर हल होजाय और अपने सुधार का सही तरीक़ा हमारे हाथ लग जाय तो सहानुभूति और कोमलता आदि जो हमारे स्वाभाविक गुण है, उन्हें बाधक होने के बजाय हम साधक बना सकती हैं। जैसा आपने पुरुषों और बच्चों के बारे में हल बताया है उसी तरह हमारा सुधार भी हमारे ही भीतर से होना चाहिए।

"मैंने स्वभाव, शिक्षा और वातावरण की बात कही है। अपनी बात साफ़ समझाने के लिए मैं एक मिसाल देती हूं।

"क़ुदरत ने औरत को कोमल, नरम-दिल, हमदर्द और बच्चों की मां बनाया है। इन चीज़ों का असर उसपर अनजान मे भी बहुत होता है। इसलिए जब उसे कुछ करना पड़ता है तो वह बेहद भावुक हो जाती है। मर्दों के संपर्क में आने पर वह बड़ी-बड़ी ग़लतियां कर बैठती है। जिस वक्त उसे सख्त रहना चाहिए उस वक़्त उसका दिल पिघल जाता है। वह जल्दी ही खुश और नाराज़ हो जाती है, उसे आसानी से अपने पर गर्व हो जाता है और आमतौर पर भोलेपन के काम करती है।

"जब मैं आपसे मिलने आई तब, हालांकि उस मुलाक़ात की मुझे बड़ी उत्सुकता थी और पहली रात उसका विचार करते-करते मुझे नींद भी नहीं आई थी, फिर भी जब मैं आपके सामने गई और आपने मुझे बैठ जाने को कहा तो मैं श्री देसाई की लंबी-चौड़ी पीठ की आड़ में जा बैठी। वहां से न मै आपकी बात सुन सकती थी और न आपका मुंह देख सकती थी। यह मेरा कितना भोलापन था ! इतना ही नहीं, मैंने देख लिया कि मैं अपनी बात भी नही समझा सकती, मेरी ज़बान ही नहीं

चलती थी। इसकी वजह मैं यह समझती हूं कि मेरे स्वभाव पर भावुकता सवार रहती है और आसानी से क़ाबू के बाहर हो जाती है। अवश्य ही, यह ख़ास दोष तो उचित तालीम से निकल जाता, मगर मैं यह कह सकती हूं कि संभव है, मैं और कोई ऐसा ही भोलेपन का काम कर बैठूं।

"मेरी एक सखी ने मुझे वे उत्तर दिखाए थे जो उसने राष्ट्रीय योजना उपसमिति की स्त्रियों के काम के बारे की प्रश्नावली पर लिख भेजे थे। आप ज़रूर जानते होंगे कि ये सवाल नंबरवार होते हैं और कुछ इस तरह के हैं: देश के जिस भाग में आप रहती हैं वहां किस हद-तक स्त्रियों को अपने हक़ से संपत्ति रखने, हासिल करने, उत्तराधिकार में मिलने, बेचने या दे डालने का अधिकार है? जिन अनेक काम-धंधों में अलग-अलग योग्यता की स्त्रियों को लगाने की ज़रूरत हो सकती है, उनके लिए स्त्रियों को उचित शिक्षा और तालीम देने का क्या बंदोबस्त और सुविधाएं हैं? वग़ैरह-वग़ैरह।

"मेरी सखी ने प्रश्नों का उत्तर न देकर यह लिखा है: 'यह कहना ज़रा भी सच नहीं है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों को शिक्षा-जैसी कोई चीज़ मिलती ही न थी।' उसने यह भी लिखा है कि 'वैदिक युग में विवाह होने पर पत्नी को कुटुंब में तुरंत प्रतिष्ठा का स्थान दिया जाता था और वह अपने पति के घर की मालकिन बन जाती थी।' आदि, आदि। उसने मनुस्मृति से प्रमाण भी दिये हैं।

"मैंने उससे पूछा कि जब सवाल आज के ज़माने के बारे में पूछे गए हैं तो पुराने रीति-रिवाज का हाल लिखने की क्या ज़रूरत थी? वह यह सोचकर कि निबंध के रूप में उत्तर बढ़िया रहता है, कुछ मुंह-ही-मुंह में कहती रही और फिर तेज़ होकर बोली, 'श्रीमती....अमुक का जवाब तो मुझसे भी बुरा है।'

"मेरी समझ से मेरी सखी की यह भूल ठीक तालीम न मिलने के कारण हुई है और तालीम उसे स्त्री होने के कारण ही नहीं दी गई। यह तो एक मुहर्रिर भी जानता है कि जब कोई सवाल पूछा जाता है तो उसके जवाब में दूसरे ही विषय पर निबंध नहीं लिखना चाहिए।

"मेरे ख़याल में मुझे उदाहरण देते जाने और अपनी बात समझाते

रहने की जरूरत नहीं है । आपको सब प्रकार की स्त्रियों का इतना विशाल अनुभव है कि आप जान गए होंगे कि मेरा यह कहना सही है या नहीं कि जिस अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्धांत से स्त्रियां सुधर सकती हैं वही उन्हें मालूम नहीं है ।

"आपने मुझे 'हरिजन' पढ़ने की सलाह दी थी । मैं शौक से पढ़ती हूं । मगर अबतक अंतरात्मा के लिए कोई सलाह मेरे देखने में नहीं आई । राष्ट्रीय आज़ादी के लिए कातना और लड़ना तो उस तालीम के कुछ पहलू ही हैं । उनमें समस्या का सारा हल समाया हुआ नहीं दीखता, क्योंकि मैंने ऐसी स्त्रियां देखी है जो कातती और कांग्रेस के आदर्शों पर अमल करने की कोशिश तो ज़रूर करती हैं; लेकिन फिर भी वह बड़ी-बड़ी भूलें कर बैठती हैं, जिनका कारण उनका स्त्री होना ही है ।

"मैं पुरुषों के जैसी नहीं बनना चाहती । लेकिन जैसे आपने पुरुषों की पशु-प्रकृति के सुधार के लिए अहिंसा सिखाई है, वैसे हमें भी वह पाठ पढ़ा दीजिए जिससे हमारा भोलेपन का दोष दूर होजाय । कृपा करके बताइए, हम कैसे अपने स्वभाव का सदुपयोग करें और अपनी बाधाओं को सुविधा बनालें ।

"स्त्री होने का यह भार हमेशा मेरे मन पर रहता है । जब कभी मैं किसी को नाक-भौं सिकोड़कर यह कहते सुनती हूं कि 'आख़िर स्त्री है', तो मेरी आत्मा में वेदना होती है (अगर आत्मा में भी वेदना हो सकती हो तो) । एक पुरुष से मैंने इन बातों की चर्चा की तो वह मेरी हँसी उड़ाकर कहने लगा, 'आपने हमारे मित्र के घर उस बच्चे को देखा था। वह गाड़ी बनाकर खेल रहा था और किटकिट करता जब खंभे के सामने पहुंचा तो उसके चौतरफ़ा घूमने के बजाय उसने अपने कंधों से धक्का देकर उसे गिराने की कोशिश की । वह अपने बाल-स्वभाव से यह समझता था कि मैं इसे गिरा दूंगा । आपकी बात से मुझे वह याद आता है । आप जो कहती हैं वह मनोवैज्ञानिक बात है । आप उसे समझने और सुलझाने का जो प्रयत्न करती हैं, उसपर मुझे हँसी आती है ।"

मैं तो यह समझकर खुश था कि सत्याग्रह की खोज के साथ स्त्रियों के उद्धार-कार्य में मेरी निश्चित सहायता शुरू होगई है । मगर पत्र-लेखिका की

यह राय है कि स्त्रियों को पुरुषों से अलग तरह का इलाज चाहिए। अगर ऐसी बात है तो मैं नहीं समझता कि कोई भी पुरुष सही हल निकाल सकेगा। वह कितनी ही कोशिश करे, असफल ही रहेगा, क्योंकि प्रकृति ने उसे स्त्री से भिन्न बनाया है। जिसके लगती है वही जानता है कि पीड़ा कहां हो रही है। इस कारण अंत में तो स्त्रियों को ही यह तय करने का अधिकार है कि उन्हें क्या चाहिए। मेरी अपनी राय तो यह है कि जैसे मूल में स्त्री और पुरुष एक हैं, ठीक उसी तरह उनकी समस्या का तत्त्व भी असल में एक ही है। दोनों में एक ही आत्मा विराजमान है। दोनों एक ही प्रकार का जीवन बिताते हैं। दोनों की एक ही भांति की भावनाएं हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक की असली सहायता के बिना दूसरा जी नहीं सकता।

मगर किसी-न-किसी तरह अनंत काल से स्त्री पर पुरुष ने आधिपत्य रखा है। इस कारण स्त्री में अपनेको नीचा समझने की मनोवृत्ति आगई है। पुरुष ने स्वार्थवश स्त्री को यह सिखाया है कि वह उससे नीचे-दर्जे की है और स्त्री ने इस शिक्षा को सच्चा मान लिया है। मगर ज्ञानी पुरुषों ने उसका दर्जा बराबर का ही माना है।

फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि एक जगह पहुंचकर दोनों के काम अलग-अलग हो जाते हैं। जहां यह बात सही है कि मूल में दोनों एक है, वहां यह भी उतना ही सच है कि दोनों की शरीर-रचना एक दूसरे से बहुत भिन्न है। इसलिए दोनों का काम भी अलग-अलग ही होना चाहिए। मातृत्व का धर्म ऐसा है जिसे अधिकांश स्त्रियां सदा ही धारण करती रहेंगी। मगर उसके लिए जिन गुणों की आवश्यकता है उनका पुरुषों मे होना ज़रूरी नहीं है। वह सहनेवाली है, वह करनेवाला है। वह स्वभाव से घर की मालकिन है, वह कमानेवाला है। वह कमाई की रक्षा करती और बांटती है। वह हर माने मे पालक है। मानव-जाति के दुधमुहे बच्चों को पाल-पोसकर बडा करने की कला उसीका विशेष धर्म और एकमात्र अधिकार है। वह संभाल न रखे तो मानव-जाति नष्ट होजाय।

मेरी राय में इसमें स्त्री और पुरुष दोनों का पतन है कि स्त्री को

घर छोड़कर घर की रक्षा के लिए बंदूक़ उठाने को कहा या समझाया जाय। यह तो फिर से जंगली बनना और नाश की शुरुआत करना हुआ। जिस घोड़े पर पुरुष सवार होता है, उसीपर स्त्री भी चढ़ने की कोशिश करती है तो वह दोनों को गिराती है। पुरुष अपनी जीवन-संगिनी से भय या प्रलोभन दिखाकर उसका खास काम छुड़ायगा, तो इसका पाप पुरुष के ही सिर होगा। वीरता जितनी बाहरी हमले से अपने घर को बचाने में है, उतनी ही उसे भीतर से स्वच्छ और व्यवस्थित रखने में है।

मैंने करोड़ों किसानों को उनकी स्वाभाविक हालत में देखा है और छोटे-से सेगांव में रोज़ देखता हूं, तो स्त्री और पुरुष के काम, कुदरती बंटवारे की तरफ मेरा ध्यान ज़ोर के साथ गया है। स्त्रियां लुहार और बढ़ई नहीं हैं, मगर खेतों में स्त्री-पुरुष दोनों काम करते हैं। अलबत्ता, भारी काम पुरुष ही करते हैं। स्त्रियां घरों की देख-रेख और व्यवस्था रखती हैं। वे कुटुंब के थोड़े-से साधनों में कुछ वृद्धि ज़रूर करती हैं, मगर मुख्य कमाई पुरुष ही करता है।

काम के बंटवारे की बात मान लेने के बाद, साधारण गुणों और संस्कृति की जरूरत क़रीब-करीब दोनों के लिए एक-सी ही है।

व्यक्ति का संबंध हो या राष्ट्र का, स्त्री-पुरुष की महान् समस्या को सुलझाने में मैंने यह सहायता दी है कि जीवन के हर पहलू में सत्य और अहिंसा की स्वीकृति के लिए पेश कर दिया। मैंने यह आशा बांध रखी है कि इस काम में निर्विवाद रूप से स्त्री ही अगुआ बनेगी और मानवीय विकास में इस तरह अपना योग्य स्थान पाकर वह अपनेको नीचा समझने की वृत्ति छोड़ देगी। ऐसा करने में वह सफल हो सकी तो वह दृढ़तापूर्वक इस नई शिक्षा को मानने से इंकार कर देगी कि सब बातों का फ़ैसला और व्यवहार काम-वासना से होता है। मुझे डर है कि मैंने कहीं यह बात ज़रा भद्दे ढंग से तो नहीं कह दी। लेकिन मैं आशा करता हूं कि मेरा अर्थ स्पष्ट है। मुझे मालूम नहीं कि जो लाखों पुरुष युद्ध में क्रियात्मक भाग ले रहे हैं उनके मन पर कामदेव का ही भूत सवार है। न अपने खेतों में साथ-साथ काम करनेवाले किसानों को उसकी चिंता या भार ही सता रहा है। मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि जो काम-

वासना प्रकृति ने ही पुरुष और स्त्री दोनों में भर दी है उससे ये लोग मुक्त हैं। मगर इतना तो बिल्कुल निश्चित है कि उनके जीवन में इस चीज की उतनी प्रधानता नहीं है जितनी कि उन लोगों के जीवन में दिखाई देती है, जो आजकल के स्त्री-पुरुष-संबंधी साहित्य में डूबे हुए हैं। जब स्त्री को या पुरुष को जीवन की कठोर और भयंकर सचाई का मुकाबला करना पड़ता है तो किसीको इन बातों के लिए फुर्सत ही नहीं मिलती।

मैंने इस अखबार में राय दी है कि स्त्री अहिंसा की मूर्त्ति है। अहिंसा का अर्थ है अनंत प्रेम और उसका अर्थ है कष्ट सहने की अनंत शक्ति। पुरुष की माता, स्त्री से बढ़कर इस शक्ति का परिचय अधिक-से-अधिक मात्रा में और किससे मिलता है? नौ महीने तक बच्चे को पेट में रखकर, उसे अपना रक्त पिलाकर और इसमें जो कष्ट होता है उसीमें आनंद मानकर वही तो यह परिचय देती है। प्रसूति की वेदना से बढ़कर और कौन-सी पीड़ा हो सकती है? मगर वह संतान की खुशी में इसे भूल जाती है और फिर रोज़-ब-रोज़ बच्चे को बड़ा करने में जो तकलीफ़ें होती हैं, वह कौन बर्दाश्त करता है? वह अपना यह प्रेम सारे मानव-समाज को दे डाले और भूल जाय कि वह कभी पुरुष के भोग-विलास की चीज़ भी हो सकती है, फिर देखे कि उसे पुरुष के बराबर, उसकी माता, जननी और मूक-पथ-प्रदर्शक बनकर खड़े होने का गौरवपूर्ण दर्जा मिलता है या नहीं। युद्ध में फंसी हुई दुनिया आज शांति का अमृतपान करने के लिए तड़प रही है। यह शांति-कला सिखाने का काम भगवान् ने स्त्री को ही दिया है। वह सत्याग्रह में अगुआ बन सकती है, क्योंकि उसके लिए पुस्तकों से मिलने वाले ज्ञान की ज़रूरत नहीं होती। उसके लिए तो तगड़ा दिल चाहिए, जो कष्ट-सहन और श्रद्धा से बनता है।

सासून-अस्पताल में मेरी मेहरबान दाई ने बरसों पहले, जब मैं वहां बीमार पड़ा था, तब एक स्त्री का किस्सा सुनाया था। उस स्त्री को एक दुखदायी चीरा लगवाना था, मगर उसने बेहोशी की दवा सूंघने से इसलिए इंकार कर दिया कि उसके पेट में जो बच्चा था, उसकी जान की जोखिम न हो। उसके लिए बेहोशी की दवा अपने बच्चे का प्रेम ही था। उसको बचाने के ख़ातिर वह बड़े-से-बड़े कष्ट सहने को तैयार थी। स्त्रियों में

ऐसी वीरांगनाएं बहुत हो सकती हैं, इसलिए उन्हें कभी अपने स्त्रीत्व को नीचा नहीं समझना चाहिए और न पुरुष न होने पर दुःख मानना चाहिए। अक्सर जब उस वीरांगना का खयाल आता है तो मुझे स्त्री के दर्जे पर ईर्ष्या होती है। क्या अच्छा हो कि वह भी पहचाने। स्त्री को पुरुष-जन्म पाने की जितनी लालसा हो सकती है उतनी पुरुष को स्त्री-जन्म पाने की हो सकती है! मगर यह इच्छा व्यर्थ है। हमें तो भगवान ने जिस योनि में जन्म दिया है और प्रकृति ने हमारा जो धर्म निश्चित कर दिया है उसीमें सुखी रहना चाहिए।

सेगांव,
१२-२-४०

: १२ :

पुरुष और स्त्रियां

प्रश्न—मैं जानना चाहता हूं कि क्या आप पुरुष और स्त्री सत्याग्रहियों का स्वच्छंदतापूर्वक मिलना-जुलना और उनका एकसाथ काम करना पसंद करेंगे, अथवा अलग इकाइयों के रूप में उनका संगठन करना और हरएक के कार्य-क्षेत्र की स्पष्ट सीमा निर्धारित कर देना ज्यादा अच्छा होगा ? मेरा अनुभव तो यह है कि पहले ढंग से निश्चित रूप से पर्याप्त परिणाम में अनुशासनहीनता तथा भ्रष्टता पैदा होगी, और ऐसा हुआ भी है। अगर आप मुझसे सहमत हैं तो इस संभवनीय बुराई का मुकाबला करने के लिए आप कौन-से नियम सुझायेंगे ?

उत्तर—मैं तो अलग इकाइयां रखना ही पसंद करूंगा। औरतों के पास औरतों के बीच करने के लिए काफ़ी से ज्यादा काम है। हमारा स्त्री-वर्ग बुरी तरह उपेक्षित है और उनके बीच काम करने के लिए विशुद्ध सच्चाई-वाली सैकड़ों बुद्धिमती स्त्री कार्य कर्तृयों की ज़रूरत है। सिद्धांत की दृष्टि से भी मैं स्त्री-पुरुष दोनों के अलग-अलग अपना काम करने में विश्वास रखता हूं। लेकिन इसके लिए कोई कठोर नियम नहीं बना सकता। दोनों के बीच के संबंध पर विवेक का नियन्त्रण होना चाहिए। दोनों के बीच कोई अंतराय न होना चाहिए। उनका परस्पर का व्यवहार प्राकृतिक और स्वेच्छापूर्ण होना चाहिए।

'हरिजन सेवक',

१-६-४०

: १३ :

एक विधवा की कठिनाई

प्रश्न—मैं एक बंगाली ब्राह्मण विधवा हूं। अपने रंडापे के दिन से—इन २४ सालों में—अपने भोजन के बारे में कठोर नियमों का पालन करने का मुझे अभ्यास है। अपने ही कुटुंब के बीच भी मुझ विधवा का अपना अलग चौका है और बर्तन भी मेरे अलग हैं। मैं आपके सत्य और अहिंसा के आदर्श में विश्वास रखती हूं। १९३० से मैं आदतन खादी पहनती हूं और नियमित रूप से कातती हूं। ढाका के एक हरिजन गांव में हमारे महिला-समाज ने एक हरिजन स्कूल खोल रखा है। मैं वहां जाती और हरिजनों में शरीक होती हूं; मैं अपनी मुसलमान बहनों से भी खुले तौर पर मिलती-जुलती हूं, जिनके लिए मेरे हृदय में शुभेच्छा है। लेकिन मैं हरिजनों या दूसरे अ-ब्राह्मण जातियों के साथ खा-पी नहीं सकती।

क्या मेरी-जैसी कट्टर विधवाएं सत्याग्रहियों, निष्क्रिय या सक्रिय, में नहीं भरती हो सकतीं ?

उत्तर—कांग्रेस-विधान की दृष्टि से भरती होने का तुम्हें पूरा अधिकार है। तुम अपने अधिकार पर अमल भी कर सकती हो। किंतु जब तुम मुझसे पूछती हो तो मैं तुम्हें भरती होने से विरत करूंगा। मैं जानता हूं कि बंगाली विधवाएं कितनी बारीकी से उन नियमों का पालन करती हैं जिन्हें कि प्रथा ने उनके लिए नियत कर रखा है। लेकिन जिन विधवाओं ने अपनेको देश के काम के लिए समर्पित कर दिया है और वह भी अहिंसात्मक रीति से, उन्हें किसीके साथ खाने-पीने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। मैं इस बात में विश्वास नहीं करता कि लोगों के साथ खाने से, फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो, आध्यात्मिक उन्नति में कोई बाधा पड़ती है। प्रधान चीज़ तो मनोभाव है। अगर कोई विधवा प्रत्येक काम को सेवा की भावना

से करती है, तो उसका भला ही होगा। कोई विधवा खान-पान तथा अन्य नियमों का बड़ी सावधानी से पालन करती है; फिर भी यदि वह पवित्र हृदय की नहीं है, तो वह सच्ची विधवा नहीं है। इसे तुम भी जानती हो और मैं भी जानता हूं कि किसी समाज का नियंत्रण करने के लिए जो नियम होते हैं, उनका दिखाऊ तौर पर पालन करके कितने ही पाखंडी अपनेको छिपा लेते हैं। इसलिए मैं तुम्हें सलाह दूंगा कि अंतर्जातीय भोज तथा ऐसी ही बातों पर जो बाधाएं हैं, उन्हें आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय प्रगति में बाधक समझकर उनकी परवा मत करो और हृदय के संस्कार पर ही ध्यान लगाओ। सत्याग्रह-दल में मैं आत्मतुष्ट आदमियों को नहीं बल्कि उनको लेना पसंद करूंगा, जिन्होंने अपने विवेक से काम लिया है और जीवन का एक ऐसा मार्ग चुन लिया है जो उनके मस्तिष्क और हृदय दोनों को श्रेयस्कर प्रतीत हुआ है।

'हरिजन-सेवक',
१५-६-४०

: १४ :

गृहस्थ आश्रम

एक बहन ने, जो अच्छी कार्यकर्तृ हैं और जो अधिक अच्छी तरह से देश-सेवा करने के उद्देश्य से अविवाहित रहना चाहती थीं, अब अपनी पसंद का साथी पाकर हाल ही में विवाह कर लिया है। लेकिन उनका विचार है कि ऐसा करके उन्होंने ग़लती की और जो ऊंचा आदर्श अपने सामने रखा था उससे गिर गईं। मैंने उनका यह भ्रम दूर करने की कोशिश की है। इसमें संदेह नहीं कि सेवा के लिए बालिकाओं का अविवाहित रहना अच्छी बात है। लेकिन लाखों में से एकाध ही ऐसा कर सकती हैं। जीवन में विवाह एक स्वाभाविक चीज़ है और इसे किसी तरह की गिरावट समझना भारी भूल है। जब आदमी किसी काम को पतन समझता है तो वह कितना ही प्रयास क्यों न करे, उससे ऊपर उठना अति कठिन हो जाता है। आदर्श यह है कि विवाह को पवित्र माना जाय और विवाहित अवस्था में आत्म-संयम से जीवन बिताया जाय। हिंदू-धर्म में चार आश्रमों में से एक आश्रम गृहस्थ है। वस्तुतः, अन्य तीन इसपर आधारित हैं। परंतु दुर्भाग्य से आजकल विवाहमात्र शारीरिक गठजोड़ माना जाता है। अन्य तीन आश्रम तो नाम शेष होगए हैं।

उपरोक्त बहन और अन्य बहनों का, जो उन्हींकी तरह सोचती हैं, कर्त्तव्य है कि वे विवाह को घृणित न मानें, बल्कि उसे उसका उचित स्थान दें और उसकी पवित्रता को बनाये रक्खें। अगर वे आवश्यक आत्म-संयम से काम लेंगी तो वे अपने भीतर सेवा-शक्ति बढ़ती हुई पायंगी। जो सेवा करना चाहती हैं, वे स्वभावतः अपने लिए वैसे ही विचारों का जीवन-साथी चुनेंगी और उन दोनों की मिली-जुली सेवाओं से देश को अधिक लाभ होगा।

यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि साधारणः आजकल लड़कियों को मातृत्व के कर्तव्य नहीं सिखाये जाते। लेकिन अगर विवाहित जीवन धर्मविधि है तो मातृत्व भी वैसा ही समझना चाहिए। आदर्श मां बनना आसान चीज नहीं है। संतान-उत्पत्ति का कार्य पूरी जिम्मेदारी से संभालने की ज़रूरत है। माता को यह पूरा ज्ञान होना चाहिए कि बच्चे के गर्भ में आने से लेकर उसके जन्म तक उसका क्या कर्तव्य है। और वह मां, जो देश को प्रतिभावान, स्वस्थ और सुसंस्कृत बच्चे देती है, निश्चय ही देश की सेवा करती है। वे बच्चे बड़े होकर सेवा में तत्पर रहेंगे।

सच तो यह है कि जिनकी आत्माएं सेवा-भाव से ओतप्रोत है, वे किसी भी दशा में क्यों न हों, सदा सेवा करते रहेंगे। ऐसा जीवन वे कभी न अपनाएंगे जो सेवा में रुकावट का कारण बने।

सेगांव,

३-३-४२

: १५ :

भरोसे की सहायता

आत्म-संयम के लिए एक भाई ने तीन तरीक़े बताये है, जिनमें दो बाहरी और एक अंदरूनी है। 'अंदरूनी' मदद के बारे में वे यों लिखते है :

"तीसरी चीज़ जो आत्म-सयम में मदद करती है, 'रामनाम' है। इसमें कामवासना को ईश्वर-दर्शन की पवित्र इच्छा मे बदल देने की बहुत बड़ी शक्ति है। वास्तव मे अनुभव से मुझे लगता है कि क़रीब-क़रीब सभी मनुष्यों में जो कामवासना पाई जाती है, वह एक तरह की 'कुडलिनी शक्ति', है, जो अपने-आप बढ़ती और विकसित होती रहती है। जिस तरह सृष्टि के शुरू से ही इसान कुदरत के खिलाफ़ लड़ता आया है, उसी तरह अपनी 'कुडलिनी' की इस स्वाभाविक गति के खिलाफ़ भी उसे लड़ना चाहिए, और उसे नीचे की तरफ़ न जाने देकर ऊपर की ओर ले जाना चाहिए—ऊर्ध्वरेता बनना चाहिए। जहा एक बार 'कुंडलिनी' का ऊपर चलना शुरू हुआ कि वह मस्तिष्क की तरफ़ चलने लगती है और आदमी धीरे-धीरे ऊर्ध्वरेता बनकर स्वय अपने-आप में और अपने चारों तरफ़ दिखाई देनेवाले दूसरे आदमियों मे एक ही ईश्वर को देखने लगता है।"

इसमें कोई शक नहीं कि 'रामनाम' सबसे ज्यादा भरोसे की सहायता है। अगर दिल से उसका जप किया जाय तो वह हरएक बुरे खयाल को फ़ौरन दूर कर सकता है, और जब बुरा खयाल मिट गया तो उसका बुरा असर होना संभव नहीं। अगर मन कमज़ोर है तो बाहर की सब सहायता बेकार है, और मन पवित्र है, तो वह सब अनावश्यक है। इसका यह मतलब कदापि नहीं समझना चाहिए कि एक पवित्र मनवाला आदमी सब तरह की छूट लेते हुए भी बेदाग़ बचा रह सकता है। ऐसा आदमी खुद ही अपने साथ कोई छूट न लेगा। उसका सारा जीवन उसकी अंदरूनी पवित्रता

का सच्चा सबूत होगा। गीता में ठीक ही कहा है कि आदमी का मन ही उसे बनाता है और वही उसे बिगाड़ता भी है। मिल्टन जब यह कहता है कि 'इंसान का मन ही सबकुछ है ; वही स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग बना देता है', तो वह भी इसी विचार की व्याख्या करता है।

शिमला,

२-५-४६

: १६ :

ब्याह और ब्रह्मचर्य

सूरत के पाटीदार आश्रम से जिन भाई ने श्री नरहरि परीख को 'हरिजनों और सवर्णों के ब्याह' के बारे में सवाल पूछा है, उन्हींने यह दूसरा सवाल भी उठाया है :

"शादी करना, और जबतक स्वराज्य न मिले, ब्रह्मचर्य का पालन करना, ये दोनों चीज़े एक साथ बैठती नहीं हैं। अगर ब्रह्मचर्य ही रखना हो तो शादी करने की क्या ज़रूरत ? और अगर शादी करना हो, तो ब्रह्मचर्य को बीच में क्यों लाया जाय ? इंसान सभ्य प्राणी है। ब्याह जैसे पवित्र रिवाज दाखिल करके उसने समाज मे व्यवस्था और इंसाफ़ क़ायम करने की कोशिश की है। अगर शादी का रिवाज न होता, तो जातीय सवाल पर घर, बाज़ार और गांव में तरह-तरह के झगड़े खड़े होते रहते। शादी करने के बाद कामवृत्ति की बागडोर खुली छोड़ देने को तो कोई नहीं कहता। उसमे संयम के लिए जगह है। और संयम से ही गृहस्थाश्रम की ख़ूबसूरती बढ़ती है। शादी का पहला हेतु तो साथ रहकर एक-दूसरे को आगे बढ़ाना है। यह मानना ही पड़ेगा कि इसमें कामवृत्ति को मर्यादा में रखकर उसकी प्यास बुझाना मुख्य उद्देश्य रहा है। स्वराज्य न मिलने तक नये ब्याहे जोड़े से ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा करना उनकी ज़िदंगी में झूठ और दिखावा दाखिल करना है। इससे उनमें विकृति भी पैदा हो सकती है। जो मर्द-औरत अनोखे दरजे के होंगे, वे तो शादी के बंधन में पड़ेंगे ही नहीं शादी करनेवाले तो आम लोग ही होंगे।.... अच्छा हुआ कि पति ने बाद में बापूजी को कह दिया कि वह पत्नी के माता बनने के हक को छीन नहीं सकते। इससे बापूजी की एक तरह से इज्ज़त बच गई। नहीं तो इस तरह ब्रह्मचर्य की बात से झूठ और दिखावे या ढोंग को मदद मिलने के सिवा दूसरा नतीजा शायद ही निकलता।

"स्वराज्य मिलने तक ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा का मर्म या भेद बापू समझावें, यह ज़रूरी है। मुझे तो यह एक हँसी की बात लगती है।"

इस सवाल में यह मान लिया गया है कि ब्याह करने में पहली चीज़ विषय-भोग है। यह दुःख की बात है। सचमुच तो ब्याह का मतलब औरत और मर्द की गाढ़ी-से-गाढ़ी मित्रता होनी चाहिए, और है। उसमें विषय-भोग को तो जगह ही नहीं। जिस शादी में विषय-भोग को जगह है, वह सच्ची शादी ही नहीं, सच्ची मित्रता ही नहीं। ऐसी शादियां मैंने देखी हैं, जहां शादी का हेतु सिर्फ़ एक-दूसरे का साथ और सेवा ही रहा है। यह सच है कि ऐसी शादियां मैंने इंग्लैंड मे ही देखी हैं। मेरी अपनी मिसाल यहां बेमौक़ा न गिनी जाय, तो मैं कहूंगा कि भरी जवानी में विषय-भोग को छोड़ने के बाद ही हम जिंदगी का सच्चा रस लूट सके। तभी हमारी जोड़ी सचमुच खिली और हम साथ मिलकर हिंदुस्तानी की और इंसान की सच्ची सेवा कर सके। यह बात मैं 'मेरे सत्य के प्रयोगों' में लिख चुका हूं। हमारा ब्रह्मचर्य अच्छी-से-अच्छी सेवा भावनाओं से पैदा हुआ था।

हज़ारों ब्याह तो आमतौर पर जैसे हुआ करते हैं, हुआ करेंगे। उनमें विषय-भोग पहली चीज़ रहेगी। अनगिनत लोग स्वाद की ख़ातिर खाते हैं। इससे स्वाद इंसान का धर्म नहीं बन जाता। थोड़े ही लोग ऐसे हैं कि जो ज़िंदा रहने के लिए खाते हैं। वे ही खाने का धर्म जानते है। इसी तरह थोड़े ही लोग औरत और मर्द के पवित्र रिश्ते का स्वाद लेने के लिए, ईश्वर को पहचानने के लिए शादी करते हैं। सच्ची शादी का धर्म तो वही पहचानते है और पालते हैं।

मालूम होता कि तेंदुलकर और इंदुमती के ब्याह के बारे में पूरी बातें सवाल पूछनेवाले भाई नहीं जानते। उनके ब्याह की प्रतिज्ञा में दोनों की इच्छा की बात थी। प्रतिज्ञा हिंदुस्तानी में लिखी गई थी। अखबार-वालों ने अपना ही अंग्रेजी तरजुमा छापा। इतनी बात पक्की है कि दोनों की ब्रह्मचर्य पालने की इच्छा थी। वह शादी विषय-भोग की ख़ातिर नहीं थी। दोनों एक-दूसरे को बरसों से पहचानते थे। इंदुमती को घर के लोगों की इजाज़त कड़ी कसौटी के बाद मिली थी। बाद में तेंदुलकर की क़ैद उनके रास्ते में आई। दोनों के बड़ों की ख्वाहिश थी कि शादी आश्रम में हो तो

अच्छा। इंदुमती को आश्रम में आसरा मिला था। वहां उसे तसल्ली मिली थी। मैंने माना था कि दोनों में खूब सेवाभाव है। मैं समझता हूं कि अभी भी ऐसा ही है। मैंने उनके लिए ब्रह्मचर्य स्वाभाविक चीज़ मानी थी।

यह सब होते हुए भी ब्रह्मचर्य में ढोंग को जगह हो सकती है। इसमें कसूर ब्रह्मचर्य का नहीं, ढोंग का है। एक अंग्रेज़ कवि ने कहा है कि ढोंग अच्छे गुणों की तारीफ़ है। जहां सच्चे सिक्के की क़ीमत है, वहां झूठा सिक्का सच्चे सिक्के की छाया में रहेगा ही। जहां अच्छे गुणों की क़दर है वहां अच्छे गुणों का दिखावा भी रहेगा। दिखावे के डर से अच्छे गुणों को छोड़ना, यह कैसी दुःख और हैरानी की बात है।

पूना जाते हुए, रेल में,

३०-६-४६

: १७ :

बहनों की दुविधा

सवाल—जब बदमाश लोग किसी औरत पर हमला करें तो उसे क्या करना चाहिए? वह भाग जाय या हिंसा से उसका सामना करे? यानी वह भाग जाने के लिए डोंगियां तैयार रखे या हथियारों से अपना बचाव करने को तैयार रहे।

जवाब—इस सवाल का मेरा जवाब बहुत सीधा-साधा है, क्योंकि मेरे खयाल में हिंसा की कोई तैयारी नहीं हो सकती। अगर ऊंची-ऊंची किस्म की हिम्मत बढ़ानी हो तो हमें अहिंसा के लिए ही सारी तैयारी करनी चाहिए। कायरता की अपेक्षा हिंसा को हमेशा तरजीह देने की निगाह से ही हिंसा बरदाश्त की जा सकती है। इसलिए मैं खतरे के समय भाग निकलने के लिए डोंगियां तैयार न रक्खूंगा। अहिंसक आदमी के लिए खतरे का कोई समय होता ही नहीं। उसे तो मौत की खामोश और शानदार तैयारी करनी होती है। इसलिए कहीं से कोई मदद न मिलने पर भी अहिंसक औरत या मर्द हँसते-हँसते मौत का सामना करेगा, क्योंकि सच्ची मदद तो भगवान से ही मिलती है। मैं इसके सिवा दूसरी कोई बात सिखा नहीं सकता और जो मैं सिखाता हूं उसीपर अमल करने के लिए यहां आया हूं। मैं नहीं जानता कि ऐसा कोई अवसर मुझे कभी मिलेगा या दिया जायगा। जो औरतें गुंडों के हमला करने पर बिना हथियार के उसका सामना नहीं कर सकतीं उन्हें हथियार रखने की सलाह देने की जरूरत नहीं। वे तो वैसा करेंगी ही। हथियार रखने या न रखने की इस हमेशा की पूछताछ में ज़रूर ही कोई-न-कोई दोष है। लोगों को स्वाभाविक रूप से आजाद रहना सीखना होगा। अगर वे मेरी इस खास नसीहत को याद रक्खें कि अहिंसा से ही सच्चा और कारगर मुक़ाबला किया जा सकता है तो वे इसी-के अनुसार अपना व्यवहार बना लेंगे। और बिना सोचे-समझे ही क्यों न हो, मगर दुनिया यही तो करती रही है, क्योंकि दुनिया की हिम्मत

ऊंचे-ऊंचे नमूने की, यानी अहिंसा से पैदा हुई हिम्मत नहीं है; इसलिए वह अपनेको अटम बम से लैस रखने की हदतक पहुंची है। जो लोग उसमें हिंसा की व्यर्थता को नहीं देख पाते, वे क़ुदरती तौर पर अपनेको अच्छे-से-अच्छे हथियारों से लेस रखे बिना न रहेंगे।

जबसे मैं दक्षिणी अफ्रीका से लौटा हूं तभी से हिंदुस्तान में अहिंसा की सोची-समझी शिक्षा बराबर दी जाती रही है और उसका जो नतीजा निकला है, सो हम देख चुके हैं।

सवाल—क्या किसी औरत को गुंडों के सामने झुकने के बजाय आत्महत्या करने की सलाह दी जा सकती है ?

जवाब—इस सवाल का ठीक-ठीक जवाब देने की ज़रूरत है। नोआ-खली के लिए रवाना होने के पहले मैंने दिल्ली में इसका जवाब दिया था। कोई औरत आत्म-समर्पण करने के बजाय निश्चय ही आत्महत्या करना ज्यादा पसंद करेगी। दूसरे शब्दों में, जिंदगी की मेरी योजना में आत्म-समर्पण को कोई जगह नहीं। लेकिन मुझसे यह पूछा गया था कि आत्म-हत्या या खुदकुशी कैसे की जाय ? मैंने तुरंत जवाब दिया कि आत्महत्या के साधन सुझाना मेरा काम नहीं। और ऐसी हालतों में आत्महत्या की स्वीकृति देने के पीछे यह विश्वास था, और है कि जो आत्महत्या करने के लिए भी तैयार है, उनमें ऐसे मानसिक विरोध और आत्मा की ऐसी पवित्रता के लिए वह जरूरी ताक़त मौजूद है, जिसके सामने हमला करनेवाला अपने हथियार डाल देता है। मैं इस दलील को आगे नहीं बढ़ा सकता, क्योंकि उसे आगे बढ़ाने की गुंजाइश नहीं है। मैं क़बूल करता हूं कि इसके लिए जिस पक्के सबूत की जरूरत है, वह मिल नहीं रहा।

सवाल—अगर अपनी जान देने और हमला करनेवाले की जान लेने-में से किसी एक को चुनने का सवाल हो, तो आप क्या सलाह देंगे ?

जवाब—जब अपनी जान देने या हमला करनेवाले की जान लेने में से किसी एक को पसंद करने का सवाल हो तो बेशक, मैं पहली चीज़ को पसंद करूंगा।

पाल्ला,

२७-१-४७

: १८ :

मैंने कैसे शुरू किया ?

'हरिजन' के लिए जीवन के शाश्वत भागों पर चर्चा करना ठीक लगता है। उनमें एक ब्रह्मचर्य है। दुनिया मामूली चीज़ों की तरफ़ दौड़ती है। शाश्वत चीज़ों के लिए उसके पास समय ही नहीं रहता। तो भी हम विचार करें तो देखेंगे कि दुनिया शाश्वत चीजों पर ही निभती है।

ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं? जो हमें ब्रह्म की तरफ ले जाय, वह ब्रह्मचर्य है। इसमें जननेंद्रिय का संयम आ जाता है। वह संयम मन, वाणी और कर्म से होना चाहिए। अगर कोई मन से भोग करे और वाणी व स्थूल कर्म पर क़ाबू रखे तो यह ब्रह्मचर्य में नहीं चलेगा। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। मन पर पूरा क़ाबू हो जाय, तो वाणी और कर्मका संयम बहुत आसान हो जाता है। मेरी कल्पना का ब्रह्मचारी स्वाभाविक रूप से स्वस्थ होगा, उसका सिर तक नहीं दुखेगा, वह स्वभावत: दीर्घजीवी होगा, उसकी बुद्धि तेज़ होगी, वह आलसी नहीं होगा, शारीरिक या बौद्धिक काम करने में थकेगा नहीं और उसकी बाहरी सुघड़ता सिर्फ दिखावा न होकर भीतर का प्रतिबिंब होगी। ऐसे ब्रह्मचारी में स्थितप्रज्ञ के सब लक्षण देखने में आवेंगे।

ऐसा ब्रह्मचारी हमें कहीं दिखाई न पड़े तो उसमें घबराने की कोई बात नहीं।

जो स्थिरवीर्य हैं, जो ऊर्ध्वरेता हैं, उनमें ऊपर के लक्षण देखने में आवें तो कौन बड़ी बात है? मनुष्य के इस वीर्य में अपने-जैसा जीव पैदा करने की ताक़त है, उस वीर्य को ऊंचे ले जाना ऐसी-वैसी बात नहीं हो सकती। जिस वीर्य के एक बूंद में इतनी ताक़त है, उसके हजारों बूंदों का ताकत का माप कौन लगा सकता है?

यहां एक जरूरी बात पर विचार कर लेना चाहिए। पातंजलि भगवान के पांच महाव्रतों में से किसी एक को लेकर उसकी साधना नहीं की जा सकती। यह हो सकता है कि सिर्फ़ सत्य के बारे में ही, क्योंकि दूसरे चार तो सत्य में छिपे हुए हैं, और इस युग के लिए तो पांच की नहीं, ग्यारह व्रतों की जरूरत है। विनोबा ने उन्हें मराठी में सूत्ररूप में रख दिया है :

अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह,
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र, भयवर्जन।
सर्वधर्मी, समानत्व, स्वदेशी, स्पर्शभावना,
ही एकादश सेवावीं नम्रत्व व्रतनिश्चये।

ये सब व्रत सत्य के पालन में से निकाले जा सकते हैं। मगर जीवन इतना सरल नहीं। एक सिद्धांत में से अनेक निकाले जा सकते हैं। तो भी एक सबसे बड़े सिद्धांत को समझने के लिए अनेक उप-सिद्धांत जानने पड़ते हैं।

यह भी समझना चाहिए कि सब व्रत समान हैं। एक टूटा कि सब टूटे। हमें आदत पड़ गई है कि सत्य और अहिंसा व्रत-भंग को हम माफ़ कर सकते हैं। इन व्रतों को तोड़नेवाले की तरफ़ हम अंगुली नहीं उठाते। अस्तेय और अपरिग्रह क्या है, सो तो हम समझते ही नहीं। मगर माना हुआ ब्रह्मचर्य का व्रत टूटा तो तोड़नेवाले का बुरा हाल होता है। जिस समाज में ऐसा होता है, उसमें कोई बड़ा दोष होना चाहिए। ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ लेने से वह निस्तेज बनता है, उसका कुछ पालन नहीं होता, सच्ची क़ीमत नहीं आंकी जाती और दम्भ बढ़ता है। कम-से-कम इस व्रत का पूरा स्थूल पालन भी अशक्य नहीं तो बहुत कठिन होता ही है। इसलिए सब व्रतों को एक साथ लेना चाहिए। ऐसा हो तभी ब्रह्मचर्य की व्याख्या सिद्ध की जा सकती है। आज की भाषा में वही सच्चा ब्रह्मचारी है, जो एकादश-व्रत का पालन मन से, वाणी से और कर्म से करता है।

नई दिल्ली,
२-६-४७

: १६ :

ब्रह्मचर्य की रक्षा

मैंने पिछले हफ्ते जिस ब्रह्मचर्य की चर्चा की थी, उसके लिए कैसी रक्षा होनी चाहिए ? जवाब तो सीधा है। जिसे रक्षा की ज़रूरत हो, वह ब्रह्मचर्य ही नहीं। मगर यह कहना आसान है। उसे समझना और उस-पर अमल करना बहुत मुश्किल है।

इतना तो साफ है कि यह बात पूर्ण ब्रह्मचारी के लिए ही सच्ची है। लेकिन जो ब्रह्मचारी बनने की कोशिश कर रहा है उसके लिए तो अनेक बंधनों की ज़रूरत है। आम के छोटे पेड़ को सुरक्षित रखने के लिए उसके चारों तरफ़ बाड़ लगानी पड़ती है। छोटा बच्चा पहले मा की गोद में सोता है, फिर पालने में और फिर चालन-गाड़ी लेकर चलाता है। जब बड़ा होकर खुद चलने-फिरने लगता है तब सब सहारा छोड़ देता है। न छोड़े तो उसे नुकसान होता है। ब्रह्मचर्य पर भी यही चीज लागू होती है।

ब्रह्मचर्य एकादश व्रतों में से एक व्रत है। यह पिछले हफ्ते मैं कह चुका हूं। इसपर से यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्य की मर्यादा या बाड़ एकादश व्रतों का पालन है। मगर एकादश व्रतों को कोई बाड़ न माने। बाड़ तो किसी खास हालत के लिए ही होती है। हालत बदली और बाड़ भी गई। मगर एकादश व्रत का पालन तो ब्रह्मचर्य का ज़रूरी हिस्सा है। उसके बिना ब्रह्मचर्य-पालन नहीं हो सकता।

आखिर में ब्रह्मचर्य मन की स्थिति है। बाहरी आचार या व्यवहार उसकी पहचान, उसकी निशानी है। जिस पुरुष के मन में जरा भी विषय-वासना नहीं रही वह कभी विकार के वश नहीं होगा। वह किसी औरत को चाहे जिस हालत में देखे, चाहे जिस रूप-रंग में देखे, तो भी उसके मन में विकार पैदा नहीं होगा। यही स्त्री के बारे में भी समझना चाहिए।

मगर जिसके मन में विकार उठा ही करते हैं उसे तो सगी बहन या बेटी को भी नहीं देखना चाहिए। मैंने अपने कुल मित्रों को यह नियम पालने की सलाह दी थी। और जिन्होंने इसका पालन किया है उन्हें फायदा हुआ है। अपने बारे में मेरा यह तजरुबा है कि जिन चीजों को देखकर दक्षिण अफ्रीका में मेरे मन में कभी विकार पैदा नहीं हुआ था, उन्हींसे दक्षिणी अफ्रीका से वापस आने पर मेरे मन में विकार पैदा हुआ। और, उसे शांत करने में मुझे काफी मेहनत करनी पड़ी।

यह बात सिर्फ जननेंद्रिय के बारे में ही सच थी, ऐसा नहीं। इंसान को शोभा न देनेवाले डर के बारे में भी यही सच पड़ी और मैं शर्मिंदा हुआ। बचपन में मैं स्वभाव से डरपोक था। दीये के बिना मैं आराम से सो नहीं सकता था। कमरे में अकेले सोना अपनी बहादुरी की निशानी समझता था। मुझे पता नहीं कि आज अगर मैं रास्ता भूल जाऊं और काली रात में घने जंगल में भटकता होऊं तो मेरी क्या हालत हो? मेरा राम मेरे पास है, यह खयाल भी उस वक्त भूल जाऊं तो? अगर बचपन का डर मेरे मन में से बिल्कुल निकल न गया हो तो मैं मानता हूं कि निर्जन जंगल में निडर रहना जननेंद्रिय के संयम से भी ज्यादा मुश्किल है। जिसकी यह हालत है, वह मेरी व्याख्या का ब्रह्मचारी तो नहीं ही गिना जायगा।

ब्रह्मचर्य की जो मर्यादा हम लोगों में मानी जाती है उसके मुताबिक ब्रह्मचारी को स्त्रियों, पशुओं और नपुंसकों के बीच नहीं रहना चाहिए। ब्रह्मचारी अकेली स्त्री या स्त्रियों की टोली को उपदेश न करे। स्त्रियों के साथ, एक आसन पर न बैठे। स्त्रियों के शरीर का कोई हिस्सा न देखे। दूध, दही, घी वगैरा चिकनी चीजें न खाये। स्नान-लेपन न करे। यह सब मैंने दक्षिणी अफ्रीका में पढ़ा था। वहां जननेंद्रिय का संयम करनेवाले पश्चिम के स्त्री-पुरुषों के बीच में रहता था। मैं उन्हें इन सब मर्यादाओं को तोड़ते देखता था। खुद भी उनका पालन नहीं करता था। यहां आकर भी न कर सका। दूध, दही वगैरा मैं हठपूर्वक छोड़ता था। उसका कारण दूसरा था। इसमें मैं हारा। अभी भी अगर मुझे कोई ऐसी वनस्पति मिल जाय जो दूध-घी की ज़रूरत पूरी कर सके तो मैं फौरन दूध वगैरा प्राणिज चीज़ें छोड़ दूं और मेरी खुशी का पार न रहे। मगर यह तो दूसरी बात हुई।

ब्रह्मचारी कभी निर्वीर्य नहीं होता। वह रोज़ वीर्य पैदा करता है और उसे इकट्ठा करके रोज़-रोज़ बढ़ाता जाता है। उसे कभी बुढ़ापा नहीं आता। उसकी बुद्धि कभी कुंठित नहीं होती।

मुझे लगता है कि जो ब्रह्मचारी बनने की सच्ची कोशिश कर रहा है, उसे भी ऊपर बताई हुई मर्यादाओं की ज़रूरत नहीं है। ब्रह्मचर्य जबर-दस्ती से यानी मन से विरुद्ध जाकर पालने की चीज नहीं। वह जबर-दस्ती से नहीं पाला जा सकता। यहां तो मन को वश में करने की बात है। जो ज़रूरत पड़ने पर भी स्त्री को छूने से भागता है, वह ब्रह्मचारी बनने की कोशिश ही नहीं करता।

इस लेख का मतलब यह नही कि लोग मनमानी करें। इसमें तो सच्चा संयम पालने की बात बताई गई है। दंभ या ढोंग के लिए यहां कोई जगह हो ही नहीं सकती।

जो छुपे तौर मे विषय-सेवन के लिए इस लेख का इस्तेमाल करेगा, वह दंभी और पापी ही गिना जायगा।

ब्रह्मचारी को नकली बाड़ों से भागना चाहिए। उसे अपने लिए अपनी मर्यादा बना लेनी है। जब उसकी ज़रूरत न रहे तब उसे तोड़ देना चाहिए। इस लेख का उद्देश्य तो यह है कि हम सच्चे ब्रह्मचर्य को पहचानें। उसकी कीमत जान लें और ऐसे कीमती ब्रह्मचर्य का पालन करें। इसमें देश-सेवा का सच्चा ज्ञान रहा है। इससे देश-सेवा करने की शक्ति भी बढ़ती है।

नई दिल्ली,
८-६-४७

: २० :

ईश्वर कहां और कौन है ?

ब्रह्मचर्य क्या है, यह बताते हुए मैंने लिखा था कि ब्रह्म यानी ईश्वर तक पहुंचने का जो आचार होना चाहिए, वह ब्रह्मचर्य है। लेकिन इतना जान लेने से ईश्वर के रूप का पता नहीं चलता। अगर उसका ठीक पता चल जाय, तो हम ईश्वर की तरफ़ जाने का ठीक रास्ता भी जान सकते है। ईश्वर मनुष्य नहीं है। इसलिए वह किसी मनुष्य में उतरता है या अवतार लेता है, ऐसा कहें तो यह निरा सत्य नहीं है। एक तरह से ईश्वर किसी खास मनुष्य में उतरता है, ऐसा कहने का मतलब सिर्फ़ इतना ही हो सकता है कि वह मनुष्य ईश्वर के ज्यादा निकट है। उसमें हमें ज्यादा ईश्वरपन दिखाई देता है। ईश्वर तो सब जगह विद्यमान है। वह सबमें मौजूद है, इसलिए हम सब ईश्वर के अवतार हैं। मगर ऐसा कहने से कोई मतलब हल नहीं होता। राम, कृष्ण इत्यादि को हम अवतार कहते हैं, क्योंकि उनमें लोगों ने ईश्वर के गुण देखे। आखिर तो राम, कृष्ण आदि मनुष्य के कल्पना-जगत में बसते हैं, और उसके कल्पित चित्र ही हैं। इतिहास में ऐसे लोग होगए या नहीं, इसके साथ इन कल्पना की तस्वीरों का कोई संबंध नहीं। कई बार हम इतिहास के राम और कृष्ण को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मुश्किलों में पड़ जाते हैं और हमें कई तरह के तर्कों का सहारा लेना पड़ता है।

सच बात तो यह है कि ईश्वर एक शक्ति हैं, तत्त्व है, शुद्ध चैतन्य है, सब जगह मौजूद है। मगर हैरानी की बात यह है कि ऐसा होते हुए भी सबको उसका सहारा या फ़ायदा नहीं मिलता, या यों कहें कि सब उसका सहारा पा नहीं सकते।

बिजली एक बड़ी शक्ति है। मगर सब उससे फ़ायदा नहीं उठा सकते। उसे पैदा करने का अटल क़ानून है। उसके अनुसार काम किया जाय तभी

बिजली पैदा की जा सकती है। बिजली जड़ है, बेजान चीज है । उसके इस्तेमाल का क़ायदा चेतन मनुष्य मेहनत करके जान सकता है। जिस चेतनामय बड़ी भारी शक्ति को हम ईश्वर कहते हैं, उसके प्रयोग का भी नियम तो है ही। लेकिन यह चीज़ बिल्कुल साफ़ है कि उस नियम को ढूंढ़ने के लिए बहुत ज्यादा परिश्रम की ज़रूरत है। उस नियम का नाम है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य को पालने का सीधा रास्ता रामनाम है। यह मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं । तुलसीदास-जैसे भक्त ऋषि-मुनियों ने वह रास्ता बताया ही है। मेरे अनुभव का कोई जरूरत से ज्यादा मतलब न निकाले। रामनाम सब जगह मौजूद रहनेवाली रामबाण दवा है, यह शायद मैंने पहले-पहल उरुल्लीकांचन में ही साफ-साफ जाना था। जो उसका पूरा इस्तेमाल जानता है, उसे जगत में कम-से-कम बाहरी काम करना पड़ता है। फिर भी उसका काम बड़े-से बड़ा होता है।

इस तरह विचार करते हुए मैं कह सकता हूं कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के जो नियम माने जाते हैं वे तो खेल ही हैं। सच्ची और अमर-रक्षा तो रामनाम ही है। राम जब जीभ से उतरकर हृदय में बढ जाता है, तभी उसका चमत्कार पूरा दिखाई देता है। यह अचूक साधन पाने के लिए एकादशव्रत तो है ही। मगर कई साधन ऐसे होते है कि उनमें से कौन-सा साधन और कौन-सा साध्य है, यह फ़र्क करना मुश्किल हो जाता है। एकादश व्रतों में से सत्य को ही लें, तो पूछा जा सकता है कि क्या सत्य साधन है और रामनाम साध्य ? या, राम साधन है और सत्य साध्य।

मगर मैं सीधी बात पर आऊं। ब्रह्मचर्य का आज माना हुआ अर्थ लें तो वह यह है जननेंद्रिय पर क़ाबू पाना। इस संयम का सुनहला रास्ता और उसकी अमर-रक्षा रामनाम है। इस रामनाम को सिद्ध करने के क़ायदे या नियम तो है ही।

नई दिल्ली,
१४-६-४७

: २१ :

नाम-साधना की निशानियां

रामनाम जिसके हृदय से निकलता है, उसकी पहचान क्या है? अगर हम इतना न समझ लें, तो रामनाम की फ़ज़ीहत हो सकती है। वैसे भी होती तो है ही। माला पहनकर और तिलक लगाकर रामनाम बड़-बड़ानेवाले बहुत मिलते हैं। कहीं मैं उनकी संख्या को बढ़ा तो नहीं रहा हूं? यह डर-ऐसा-वैसा नहीं है। आजकल के मिथ्याचार में क्या करना चाहिए? क्या चुप रहना ठीक नहीं? हो सकता है। लेकिन बनावटी चुप से कोई फ़ायदा नही। जीते-जागते मौन के लिए तो बड़ी भारी साधना की ज़रूरत है। उसकी अनुपस्थिति में हृदयगत रामनाम की पहचान क्या? इसपर हम विचार करें।

एक वाक्य में कहा जाय तो राम के भक्त और गीता के स्थितप्रज्ञ में कोई भेद नहीं। ज्यादा गहरे उतरे तो हम देखेंगे कि रामभक्त पंचमहाभूतों का सेवक होगा। वह प्रकृति के क़ानून पर चलेगा। इसलिए इसे किसी तरह की बीमारी होगी ही नहीं। होगी भी तो वह उसे पच महाव्रतों की मदद से अच्छा कर लेगा। किसी भी उपाय से भौतिक दुःख दूर कर लेना आत्मा का काम नहीं, शरीर का भले ही हो। इसलिए जो शरीर को ही आत्मा मानते है, जिनकी दृष्टि में शरीर से अलग शरीरधारी आत्मा जैसा कोई तत्त्व नहीं, वे तो शरीर को टिकाये रखने के लिए सारी दुनिया में भटकेंगे, लंका जायंगे। इससे उल्टे जो यह मानता है कि आत्मा देह में रहते हुए भी देह से अलग है, हमेशा स्थिर रहनेवाला तत्त्व है, अनित्य शरीर में बसता है, शरीर की संभाल तो रखता है, पर शरीर के जाने से घबराता नहीं, दुःखी नहीं होता और सहज ही उसे छोड़ देता है, वह देहधारी डाक्टर-वैद्यों के पीछे नहीं भटकता। वह खुद ही अपना डाक्टर

बन जाता है। सब काम करते हुए भी वह आत्मा का ही खयाल रखता है। वह मूर्छा में से जागे हुए की तरह बर्ताव करता है।

ऐसा इंसान हर सांस के साथ रामनाम जपता रहता है। वह सोता है, तो भी उसका राम जागता है। खाते-पीते कुछ भी काम करते हुए राम तो उसके साथ ही रहेगा। इस साथी का खो जाना ही इंसान की सच्ची मृत्यु है।

इस राम को अपने पास रखने के लिए या अपने-आपको राम के पास रखने के लिए वह पंचमहाभूतों की मदद लेकर संतोष मानेगा, यानि वह मिट्टी, हवा, पानी, सूरज की रोशनी और आकाश का सहज और साफ और व्यवस्थित तरीक़े से इस्तेमाल करके जो पा सकेगा, उसमें संतोष मानेगा। यह उपयोग रामनाम का पूरक नहीं; पर रामनाम की साधना की निशानी है। रामनाम को इन मददगारों की जरूरत नहीं। लेकिन इसके बदले जो एक के बाद दूसरे वैद्य-हकीमों के पीछे दौड़े और रामनाम का दावा करे, उसकी बात कुछ जंचती नहीं ?

एक ज्ञानी ने तो मेरी बात पढ़कर यह लिखा कि रामनाम ऐसा कीमिया है कि जो शरीर को बदल डालता है। वीर्य को इकट्ठा करना दबाकर रक्खे हुए धन के समान है। उसमें से अमोघ शक्ति पैदा करनेवाला तो रामनाम ही है। खाली संग्रह करने से तो घबराहट होती है किसी भी समय उसका पतन हो सकता है। लेकिन जब रामनाम के स्पर्श से वह वीर्य गतिवान होता है, ऊर्ध्वगामी बनता है, तब उसका पतन असंभव हो जाता है।

शरीर के पोषण के लिए शुद्ध खून जरूरी है। आत्मा के पोषण के लिए शुद्ध वीर्य-शक्ति की ज़रूरत है। इसे दिव्यशक्ति कह सकते हैं। यह शक्ति सारी इंद्रियों की शिथिलता को मिटा सकती है। इसलिए कहा है कि रामनाम हृदय में बैठ जाय, तो नई जिंदगी शुरू होती है। यह क़ानून जवान, बूढ़े, मर्द, औरत सबपर लागू होता है।

पश्चिम में भी यह खयाल पाया जाता है 'क्रिश्चियन साइंस' नाम का संप्रदाय बिल्कुल यही नहीं तो क़रीब-क़रीब इसी तरह की बात करता है।

मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान को ऐसे सहारे की ज़रूरत नहीं, क्योंकि हिंदुस्तान में तो यह दिव्य विद्या पुराने ज़माने से ही चली आ रही है ।"

हरिद्वार,
२१-६-४७

: २२ :

एक उलझन

विलायत में अच्छी तरह शिक्षा पाये हुए एक हिंदुस्तानी भाई के वहां से लिखे पत्र में से कुछ हिस्सा नीचे देता हूं :

"स्त्री और पुरुष के संबंधों के बारे में मेरे मन की हालत कुछ विचित्र-सी है। मैंने आपको लिखा ही है कि कुछ बंधन और मर्यादाएं मैं रखने ही वाला हूं और रखी भी हैं। लेकिन जब सोचता हूं तो अपनी हालत मुझे त्रिशंकु-जैसी दिखाई देती है। एक तरफ से लगता है कि स्त्री-पुरुष के संबंध को ज्यादा क़ुदरती बनानेसे बुराई और पापाचार कम होगा। दूसरी तरफ से लगता है कि एक-दूसरे को छूने से बुराई पैदा हुए बिना रह नहीं सकती। यहां की अदालतों में जब भाई-बहन और बाप-बेटी के बारे में मुकद्दमे आते हैं, तब भी ऐसा लगता है कि उन लोगों ने एक-दूसरे का स्पर्श जब शुरू किया, तब उसमें दोष नहीं था। मुझे लगता है कि स्पर्श-सुख की वजहसे आदमी बदमाश हो, तो एक महीने या एक हफ्ते में और भला हो तो धीरे-धीरे १० बरस में भी पाप की तरफ़ झुके बिना नहीं रह सकता। छुटपन में जो तालीम पाई है उसपर से जो विचार बन गए हैं और आजकल के विचारों की किताबें पढ़ने से जो विचार आते हैं, उन दोनों में हमेशा झगड़ा चला करता है। यह भी खयाल आता है कि स्पर्श-मात्र छोड़ देने में क्या काम चल सकेगा? मैं अभीतक किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाया हूं। लेकिन थोड़े में मेरी यही स्थिति है।"

बहुतेरे नौजवान लड़के-लड़कियों की यही हालत होती है। उनके लिए सीधा रास्ता यही है : उन्हें स्पर्शमात्र का त्याग करना ही चाहिए। किताबों में लिखी हुई मर्यादाएं उस समय में होनेवाले अनुभव से बनाई गई हैं। लेखकों के लिए वे ज़रूरी भी थीं। साधक को अपने लिए उनमें से

कुछ मर्यादाएं या दूसरी कुछ नई मर्यादाएं बना लेनी होंगी। अंतिम मंज़िल को बीच में रखकर उसके आसपास एक दायरा खींचें तो मंजिल तक पहुंचने के कई रास्ते दिखाई देंगे। उनमें से जो आसान मालूम हो उसपर चले और मंजिल पर पहुंचे।

जिस साधक को अपने-आप पर भरोसा नहीं वह अगर दूसरों की नकल करने लगे तो ज़रूर ठोकर खायगा।

इतना सावधान कर देने के बाद मैं कहूंगा कि इंगलैंड की अदालतों में चलनेवाले मुक़द्दमों में से या उपन्यास पढ़कर ब्रह्मचर्य का रास्ता खोजना आकाश-कुसुम लाने-जैसी बेकार कोशिश है। सच्चा इंगलैंड वहां की अदालतों में या उपन्यास में नहीं। इन दोनों का अपनी-अपनी जगह भले ही कुछ उपयोग हो मगर ब्रह्मचर्य की साधना करनेवालों को इन दोनों को छूना भी नहीं चाहिए।

इंगलैंड के बड़े-बड़े साधकों के दिल में इस पत्र लिखनेवाले भाई की तरह उलझनें नही पैदा होतीं, क्योंकि वे सब यह जानते हैं कि उनका राम उनके दिल में बसता है। वे न अपने-आपको धोखा देते है और न दूसरों को। उनकी बहन उनके लिए बहन ही है और मां मां है। ऐसे साधक के लिए सारी स्त्रियां बहन या मां है। उसे कभी यह भी खयाल भी नहीं आता कि स्पर्श-मात्र बुरा है। उसमें से दोष पैदा होने का डर नहीं रहता। वह सारी स्त्रियों में उसी भगवान को देखता है, जिसे वह अपने में पाता है।

ऐसे लोग हमने नहीं देखे, इसलिए यह मानना कि वे हो ही नहीं सकते, घमंड की निशानी है। इससे ब्रह्मचर्य की महिमा घटती है। ईश्वर को हमने नहीं देखा या ईश्वर को जिसने देखा, ऐसा कोई आदमी हमें नहीं मिला है। इसलिए ईश्वर है ही नहीं यह मानने में जितनी भूल है, उतनी ही ब्रह्मचर्य की ताक़त को अपने नाप से नापने में रही है।

नई दिल्ली,
२६-६-४७

: २३ :

पुराने विचारों का बचाव

कुछ दिन पहले मैंने एक पत्र का कुछ हिस्सा 'हरिजन सेवक' में दिया था। उसपर से पत्र लिखनेवाले भाई लिखते हैं :

"मेरे ग्यारह साल पहले के लिखे हुए खत पर आपने जो विचार बताये हैं, उनसे मैं पूरी तरह सहमत हूं। मगर उनपर चलने की हिम्मत मुझमें कम है। मन में आता है कि सांप की बांबी में हाथ डाला ही क्यों जाय? आप आदर्श पुरुष की कल्पना जगत के सामने रखें, तो भी लोक-संग्रह की दृष्टि से यह अच्छा होगा कि आप लोगों को मर्यादा और बंधन रखने की सलाह दें। यह ज्यादा रक्षा होगी। स्त्री-पुरुष का भेद मानने की ज़रूरत नहीं। यह स्त्री 'मेरी है' यह भाव मन से निकाल देने चाहिए। बिल्कुल सात्विक भूमिका का ही प्रचार करके हिंदुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी ने अन-जान में हमारे समाज को जो नुकसान पहुंचाया है, वह सचमुच भयानक है। श्री किशोरलाल भाई तो यहां तक कहते हैं कि स्त्री के साथ एक चटाई पर भी न बैठना चाहिए। इसमें उनका पुराण-पंथीपन दीखता हो तो भी उनकी बात सोचने लायक़ है।

" 'यद्यदाचरते श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः'—गीता की यह चेतावनी भूली नहीं जा सकती। ऊंचे दरवाजे को पहुंचे हुए लोगों को यह डर मन में रखना चाहिए कि मामूली शक्तिवाले बिना समझे उनकी सिर्फ़ नक़ल ही करेंगे। इसलिए उन्हें बंधन रखकर अपने दरजे से ही आचरण करना चाहिए। मुझे लगता है, इसीमें समाज का भला है। हां, एक सचोट दलील आपके पक्ष में है। वह यह कि ऊंचे दरजेतक पहुंच सकने की मिसाल जगत के सामने रखनेवाला कोई न हो, तो समाज की श्रद्धा का लोप हो जाय। इंसान के भीतर रहनेवाली भगवान की ज्योति किसीको तो बतानी ही होगी। इसके

जवाब में मैं इतना ही कहूंगा कि इस चीज का फ़ैसला जमा-खच का हिसाब निकालकर बड़ों को खुद करना होगा।"

यह टीका मुझे अच्छी लगती है। सबका अपनी कमज़ोरी पहचाननी चाहिए। जान-बूझकर उसे जो छिपाता है और बलवान की नक़ल करने जाता है वह ठोकर खायगा ही। इसलिए मैंने तो कहा है कि हरेक को अपनी मर्यादा खुद बांधनी चाहिए। मुझे नहीं लगता कि किशोरलाल-भाई जिस चटाई पर स्त्री बैठी हो, उसपर बैठने से इंकार करेंगे। ऐसा हो तो मुझे ताज्जुब होगा। मैं तो ऐसी मर्यादा को समझ नहीं सकता। मैंने उनके मुह से ऐसा कभी नहीं सुना।

स्त्री की निर्दोष संगति की तुलना सांप के बिल से करना मैं तो अज्ञान ही मानता हूं। इसमें स्त्री-जाति का और पुरुष का अपमान है। क्या जवान लड़का अपनी मा के पास नहीं बैठेगा? बहन के पास नही बैठेगा? रेल मे उसके साथ एक पटरी पर नहीं बैठेगा। ऐसे सग से भी जिसका मन चचल होता हो, उसकी हालत कितनी दयाजनक मानी जायगी?

यह मैं मानता हूं कि लोक-संग्रह के लिए बहुत-कुछ छोड़ना चाहिए। मगर इसमें भी समझ से काम लेना होगा। यूरोप में नंगों का एक संघ है। उन्होंने मुझे इसमें खींचने की कोशिश की। मैंने साफ़ इंकार कर दिया और कहा:

"लोग इस तरह की बात सहन नहीं कर सकते। जबतक उसके लिए ज़रूरी पवित्रता न हो तबतक ऐसी नुमाइश नहीं की जा सकती।" तात्त्विक दृष्टि से मैं यह मानता हूं कि स्त्री-पुरुष बिलकुल नंगे हों, तो भी उससे कुछ नुक़सान न होना चाहिए। आदम और हौवा अपने निर्दोष ज़माने में नंगे ही घूमते थे। जब उन्हें अपने नंगेपन का ज्ञान हुआ, तब उन्होंने अपने अंग ढंकने शुरू किये और वे स्वर्ग से निकाल दिए गए। हम गिरे हुए हैं। इसे भूलकर चलेंगे तो नुकसान ही होगा। नंगों की मिसाल को मैं लोक-संग्रह की आवश्यकता में गिनूंगा।

मगर लोक-संग्रह की दलील देकर मुझपर दबाव डाला गया कि मैं छुआछूत मिटाने की बात छोड़ दू। लोक-संग्रह की दृष्टि से नौबरस की लड़की की शादी करने का रिवाज चालू रखने की बात कही गई है। लोक-

संग्रह की ख़ातिर दरिया पार जाने से रोका जाता था। ऐसी और भी कई मिसालें दी जा सकती हैं। मगर घर के कुएं में हम तैरें, डूब न मरें।

बंधन ऐसे तो नहीं होने चाहिए कि जिससे स्त्री-पुरुष का भेद हम भूल ही न सकें। हमें याद रखना चाहिए कि हमारे अनेक कामों में इस फ़र्क के लिए कोई जगह नहीं है। दरअसल इस भेद को याद करने का मौका एक ही होता है, वह तब जब काम सवारी करता है। जिन स्त्री-पुरुषों पर सारे दिन ही काम सवार रहता है, उनके मन सड़े हुए हैं। मैं मानता हूं कि ऐसे लोग लोक-कल्याण नहीं कर सकते। इंसान की हालत आमतौर पर ऐसी नहीं होती। करोड़ों देहाती अगर सारे दिन इसी चीज़ का ख़याल किया करें, तो वे किसी भी शुभ काम के लायक़ नहीं रह सकते।

नई दिल्ली,
१३-७-४७

: २४ :

मुश्किल को समझना

पिछले दिनों के मेरे भाषणों को पढ़कर, जिनसे हिंदुस्तान की पिछली घटनाओं के कारण मुझे होनेवाले दुःख का आभास मिलता है, एक अंग्रेज बहन लिखती हैं :

"क्या इस गहरे दुःख, इंसान के नरक की ओर लगातार बढ़ते जाने और वातावरण में निराशा की भावना के फैलने का यह मतलब है कि आपको १२५ बरस से भी ज्यादा अरसे तक जीना चाहिए ? मर जाना कितनी आसान बात है।........इंसान रात-दिन नरक की तकलीफ़ महसूस करता है ।...."

मैं जानता हूं कि यह बहन मजाक़ के बतौर मुझसे यह उम्मीद नहीं करतीं कि मुझे १२५ बरस से ज्यादा जीना चाहिए । वे भगवान में जबर-दस्त भरोसा रखनेवाली एक बहादुर महिला हैं । जितने दिनों जीना मेरे भाग में बदा है, उसमे एक दिन भी बढ़ा लेने का सवाल मेरे साथ नहीं है । एक भाग्यवादी के नाते मैं तो मानता हूं कि भगवान की इच्छा के बिना एक तिनका भी नहीं हिलता । अभीतक मैंने जो कुछ किया है और आगे भी करना चाहूंगा, वह यह है कि मैं १२५ बरस की ज़िंदगी चाहता हूं, बशर्ते कि वह ज़िंदगी इंसान की ज्यादा-से-ज्यादा सेवा करने में लगे। मगर जबतक ऐसी इच्छा के साथ उसके अनुरूप ज़रूरी और सही आचरण न किया जाय, तबतक इससे कोई फ़ायदा नहीं । गीता में अर्जुन के सवाल पूछने पर भगवान कृष्ण ने 'स्थितप्रज्ञ' का जो वर्णन किया है, उसका सर एडविन आरनाल्ड ने अंग्रेज़ी में तरजुमा किया है । वह वर्णन यों हैं :

'अर्जुन—हे केशव, जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है और जो भगवान के ध्यान में लीन है, उसका क्या लक्षण है ? वह कैसे बोलता है, कैसे चलता है ? कैसे बैठता है या रहता है ?

'कृष्ण—हे अर्जुन, जब कोई मनुष्य अपने मन में भरी हुई सारी वासनाओं को छोड़ देता है और अपनी आत्मा के लिए आत्मा में ही पूरा संतोष पा जाता है, जो उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

'जो दुःख पाने से घबराता नहीं और सुख की इच्छा नहीं करता, काम, भय और क्रोध जिसके नष्ट होगए है, उसे मुनि, साधु या स्थितधी कहते है।

'सब विषयो से जिसका मन हट गया है और भला-बुरा कुछ भी हुआ हो, उसमे जिसे न खुशी है न दुःख है, ऐसा आदमी स्थिर बुद्धिवाला होता है।

'जैसे कछुआ अपने चारों पांव सिकोड़ लेता है, इसी तरह जो मनुष्य अपनी इंद्रियों को उनके विषय-भोग से खीचकर अपने क़ाबू मे कर लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

'इंद्रियों को विषयो से अलग रखने पर वे विषय तो नष्ट हो जाते है, मगर उनकी वासना बनी रहती है। वह भी ब्रह्म के दर्शन होने पर नष्ट हो जाती है।

'हे अर्जुन, बुद्धिमान आदमी के अपनी इंद्रियो को दाबने की कोशिश करते हुये भी बलवान इंद्रियां जबरन उसका मन अपनी तरफ़ खीच लेती है।

'इसलिए मनुष्य को उन्हें वश में करके अपना मन पूरी तरह मुझमें लगाना चाहिए, क्योंकि जिस पुरुष की इंद्रियां उसके वश में होती है, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है।

'इंद्रियों के विषयों का ध्यान करते-करते उनमे प्रीति पैदा हो जाती है, उसी प्रीति से इच्छा को ज़ोर मिलता है। जब इच्छा पूरी नही होती तो गुस्सा आने लगता है और गुस्से से संम्मोह यानी बेवक़ूफ़ी पैदा होती है, बेवक़ूफ़ी से स्मरणशक्ति घट जाती है। इसके घटने से बुद्धि का नाश होता है और जब बुद्धि का नाश हो जाता है तो ऐसा व्यक्ति पूरी तरह बरबाद हो जाता है।

'मगर प्रीति और द्वेष छोड़कर जिसने अपनी इंद्रियों को अपने वश में कर लिया है उसके विषय-सेवन करने पर भी उसे शांति ही मिलती है।

'मन के प्रसन्न होने से सब दुःखों का नाश हो जाता है और प्रसन्न मन-

वाले की बुद्धि जल्द ही स्थिर होती है।

'जिसका मन अपने वश में नहीं है, उसे आत्मज्ञान नहीं होता और जिसे आत्मज्ञान नहीं, उसे शांति नहीं मिलती और जिसे शांति नहीं मिलती, उसे सुख कैसे मिलेगा ?

'जिसका मन इंद्रियों की इच्छानुसार चलता है, उसकी बुद्धि को मन उसी तरह नष्ट कर देता है, जिस तरह समुद्र में पड़ी हुई नाव को तूफान नष्ट कर देता है।

'इसलिए, हे अर्जुन, जो आदमी अपनी इंद्रियों को उनके विषयों से सब तरह खीचकर उन्हें अपने वश में कर लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

'अज्ञानी लोगों के लिए जो रात है, उसमें योगी पुरुष जागता है और जिस अज्ञानरूपी अंधेरे में, सब प्राणी जागते हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

'अज्ञानी लोगों के लिए जो रात है, उसमें योगी पुरुष जागता है और जिस अज्ञानरूपी अंधेरे में सब प्राणी जागते है, उसे योगी पुरुष रात समझता है।

'जैसे लबालब भरे हुए समुद्र में कई नदियां मिलती हैं, पर उसे अशांत नहीं कर पातीं उसी तरह जिस स्थिर बुद्धिवाले पुरुष में सारे भोग किसी प्रकार का विकार पैदा किये बिना समा जाते हे उसे ही पूरी शांति मिलती है, न कि भोगों की इच्छा रखनेवाले को।

'जो व्यक्ति सारी कामनाओं को छोड़कर, ममता और अंहकार को दिल से हटाकर और इच्छा-रहित होकर बरतता है, उसे शांति मिलती है।

'हे अर्जुन, इस हालत को 'ब्राह्मीस्थिति' कहते हैं। उसके मिल जाने के बाद आदमी फिर मोह में नहीं पड़ता। और अगर इस हालत में रहते हुए वह मर जाय, तो 'ब्राह्मनिर्वाण' पाता है।'

मैं स्वीकार करता हूं कि इस स्थिति को पहुंचने की कोशिश करने पर भी मैं अभी उससे बहुत दूर हूं। मैं अनुभव करता हूं कि जब हमारे आस-पास इतना तूफान मचा हुआ है, तब उस स्थिति को प्राप्त करना कितना कठिन है !

इसी पत्र में वह बहन लिखती हैं :

"खुशी की बात सिर्फ़ इतनी ही है कि इंसान चाहे थोड़े ही क्यों न हों ईश्वर से अलग रहने में अपनी स्वाभाविक कमज़ोरी को समझ गये हैं।"

इन बहन के पत्र के प्रारंभ में यह आदर्श वाक्य लिखा हुआ है :

"जो दिल नन्हे बच्चों की तरह इतने पवित्र हैं कि वे किसीसे दुश्मनी कर ही नहीं सकते, उन्हींमें इंसान को आज़ाद कराने के उपाय भरे रहते हैं।"

यह बात कितनी सच है और साथ ही कितनी मुश्किल है ! !

नई दिल्ली,
२२-७-४७

: २५ :

एक विद्यार्थी की उलझन

एक विद्यार्थी ने अपने शिक्षक को एक पत्र लिखा था। उसका नीचे का हिस्सा शिक्षक ने मेरी राय जानने के लिए मेरे पास भेजा है। विद्यार्थी का पत्र अंग्रेजी में है। उसकी मातृभाषा क्या होगी, यह मैं नहीं जानता।

"मुझे दो बातों ने घेर लिया है : एक तरफ़ से मेरे देश-प्रेम ने और दूसरी तरफ़ से तेज विषय-वासना ने। इससे मुझमें विरोधी भावनाएं पैदा होती हैं और मेरे निर्णय हिल जाते हैं। मुझे अपने देश का पहले नंबर का सेवक बनना है। लेकिन साथ ही मुझे दुनिया का आनंद भी लेना है। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि ईश्वर में मेरी श्रद्धा नहीं है, हालांकि कितनी ही बार मुझे ईश्वर का डर मालूम होता है। सच पूछा जाय तो सारा जीवन ही एक समस्या है। मैं क्या जानूं कि इस जीवन के बाद मेरा क्या होनेवाल है? मैंने बहुत-सी जलती चिताएं देखी हैं। आखिरी चिता मैंने अपनी मान ली है। जलती चिता के दृश्य ने मुझपर भयंकर असर पैदा किया। क्या मेरे भी ऐसे ही हाल होंगे? यह विचार भी मैं सहन नहीं कर सकता। किसी घायल को देखता हूं तो मेरे सिर में चक्कर आने लगता है। बाद में मेरी कल्पना काम करने लगती है और कहती है कि तेरे शरीर का भी किसी दिन यही हाल होगा। मैं जानता हूं कि किसी शरीर को इस हालत में मुक्ति नहीं मिलती। साथ ही, ऐसा लगता है कि मौत के बाद जीवन नहीं है, और इसलिए मुझे मौत का डर लगता है।

"इस हालत में मेरे पास सिर्फ़ दो ही रास्ते हैं। या तो मैं इस उलझन मे फंसकर जलता रहूं या दुनिया के ऐश-आराम में लिपटकर दूसरी बातों का खयाल तक न करूं। दूसरे किसीके सामने मैंने यह बात क़बूल नहीं की,

लेकिन आपके सामने क़बूल करता हूं कि मैंने तो दुनिया का आनंद लूटने का रास्ता ही पकड़ा है।

"यह दुनिया ही सच्ची है और किसी भी क़ीमत पर उसका आनंद लूटना ही है। मेरी पत्नी अभी-अभी मरी है। मेरे मन में उसके लिए प्रेम था। लेकिन मैं देखता हूं कि उस प्रेम की जड़ में उसका मरना नहीं था, बल्कि मेरा यह स्वार्थ था कि उसके मरने से मैं अकेला रह गया। मरने के बाद तो कोई गुत्थी सुलझाने को रहती नहीं और जीवित आदमी के लिए तो सारा जीवन ही एक गुत्थी है। शुद्ध प्रेम में मेरी श्रद्धा नहीं है। जिसे प्रेम के नाम से पहचाना जाता है वह प्रेम तो सिर्फ़ विषय-भोग का होता है। अगर शुद्ध प्रेम-जैसी कोई चीज़ होती तो अपनी पत्नी की अपेक्षा अपने मां-बाप से मेरा आकर्षण ज्यादा होना चाहिए था। लेकिन हालत तो इससे बिल्कुल उलटी थी, मां-बाप की अपेक्षा पत्नी में मेरा आकर्षण ज्यादा था। यह सच है कि मैं अपनी पत्नी के प्रति वफ़ादार था। लेकिन उसे मैं यह गारंटी नहीं दिला सकता था कि उसके मरने के बाद भी उसकी तरफ़ मेरा प्रेम बना रहेगा। उसके मरने के बाद मुझे जो दुःख होगा, वह तो उसके न रहने से पैदा होनेवाली मुसीबतों का दुःख होगा। आप इसे एक तरह की बेरहमी कह सकते हैं। सो जैसा भी हो, लेकिन सच्ची हालत यही है। अब मेहरबानी करके मुझे लिखिए और रास्ता बताइए।"

पत्र के इस हिस्से में तीन बातें आती हैं। एक, विषय-वासना और देश-प्रेम के बीच खड़ा होनेवाला विरोध; दूसरी, ईश्वर में और मरने के बाद भविष्य में श्रद्धा, और तीसरी शुद्ध प्रेम और विषय-वासना का द्वंद-युद्ध।

पहली उलझन ठीक ढंग से रखी गई मालूम होती है। उसका सार यह है कि विषय-भोग की इच्छा सच्ची बात है और देश-प्रेम बहते प्रवाह में खिंच जाने के समान है। यहां देश-प्रेम का अर्थ होगा सत्ता पाने के प्रपंच में पड़ना, ताकि उसके साथ विषय-वासना पूरी करने का मेल बैठ सके। इस तरह के बहुत-से उदाहरण मिल सकते हैं। देश-प्रेम का मेरा अर्थ यह है कि प्रजा के गरीब लोगों के लिए भी हमारे दिल में प्रेम की आग जलती हो। यह आग विषय-वासना-जैसी चीज़ को हमेशा जला डालती है। इसलिए मैं देश-प्रेम और विषय-वासना के बीच कोई झगड़ा देखता ही

नहीं। उलटे, यह प्रेम हमेशा विषय-वासना को जीत लेता है। ऐसे विश्व प्रेम को, जो वृत्ति तोड़ सके, उसे पोसने का समय भी कहां बच सकता है ? इसके खिलाफ़ जिस आदमी को विषय-वासना ने अपने वश में कर लिया है, उसका तो नाश ही होता है।

ईश्वर के बारे में और मरने के बाद भविष्य के बारे में अश्रद्धा भी ऊपर की वासना में ही पैदा होती है, क्योंकि यह वासना औरत और मर्द को जड़ से हिला देती है। अनिश्चय उन्हें खा जाता है। विषय-वासना के नाश होने जाने पर ही ईश्वर पर रहनेवाली श्रद्धा जीती है। दोनों चीजें साथ-साथ नहीं रह सकतीं।

तीसरी उलझन में पहली को ही दुहराया गया मालूम होता है। पति और पत्नी के बीच शुद्ध प्रेम हो, तो वह दूसरे सब प्रेमों की अपेक्षा आदमी को ईश्वर के ज्यादा पास ले जाता है। लेकिन जब पति-पत्नी के बीच के प्रेम में विषय वासना मिल जाती है, तब वह मनुष्य को अपने भगवान से दूर ले जाती है। इसमें से एक सवाल पैदा होता है, अगर औरत और मर्द का भेद पैदा न हो, विषय-वासना की इच्छा मर जाय तो शादी की जरूरत ही क्या रह जाय !

अपने पत्र में विद्यार्थी ने ठीक ही स्वीकार किया है कि अपनी पत्नी की तरफ़ उसका स्वार्थभरा प्रेम था। अगर वह प्रेम निःस्वार्थ होता तो अपनी जीवन-संगिनी के मरने के बाद विद्यार्थी का जीवन ज्यादा ऊंचा उठता, क्योंकि साथी के मरने के बाद उसकी याद में से पिछड़े हुए लोगों की सेवा में उस भाई की लगन ज्यादा बढ़ी होती।

नई दिल्ली,

१२-१०-४७

: २६ :

शंकाओं के जवाब

[१९३२–३३ के बीच श्री मणिबहन, लेडी ठाकरसी और मीरा-बहन के साथ यरवदा-जेल में बापू की मुलाकात लेने का मुझे सौभाग्य मिला था। मैं जब साबरमती वापस आ गया, तब बापूजी ने नीचे लिखा बगैर तारीख का पत्र मेरे पास भेजा। —पी० जी० मेथ्यु]

"फिर से पढ़ा नहीं

'प्रिय मेथ्यु,

"मुझे आपके तीन पत्र मिले। बुद्धि की अपनी जगह तो है ही, लेकिन उसे हृदय की जगह पर नहीं बैठना चाहिए। आप अपने जीवन के या किसी भी पहचान के बुद्धिशाली आदमी के जीवन के किन्हीं चौबीस घंटों को जांच-कर देखेंगे, तो आपको मालूम होगा कि इस समय में किये हुए क़रीब-क़रीब सभी काम भावना से किये हुए होंगे, बुद्धि से नहीं। इससे यह नसीहत मिलती है कि बुद्धि का एक बार विकास हो जाने के बाद वह अपने स्वभाव के अनुसार अपने-आप ही काम करती है, और अगर हृदय शुद्ध हो, तो जो कुछ भी वहमभरा या अनीतिमय हो, उसे वह छोड़ देती है। बुद्धि एक चौकीदार है और अगर वह अपने दरवाजे पर सदा जाग्रत और अटल हालत में रहे, तो कहा जा सकता है कि वह अपनी जगह पर है। और मेरा दावा है कि वह आश्रम में यह काम बजाती ही है। जीवन यानी कर्त्तव्य यानी कर्म, जब बुद्धि से—तर्क से कर्मों को ख़तम कर दिया जाता है तब वह दूसरे की जगह लेनेवाली बन जाती है और ऐसी बुद्धि को हटाना ज़रूरी है।

"अब आपका दूसरा पत्र लेता हूं। मैं यह नहीं कहता कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी का धंधा अख्तियार करना चाहिए। मेरा कहना तो यह है कि जिस तरह हमारे शरीर का रंग और बहुत-सी दूसरी बातें हमें विरासत में मिलती

हैं, उसी तरह धंधा भी मिलता है। जो कुदरत में हो रहा है, मैंने वही बात कही है। अपनी ख़ुद की राय मैंने नहीं बताई है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चले आनेवाले स्वभाव के कारण शक्ति का संग्रह होता है, और नीतिमान मनुष्य के लिए वह जरूरी है। लेकिन इस नियम का मतलब इतना ही है कि हम अपने नजदीक के तथा दूर के पूर्वजों से विरासत में मिली हुई भौतिक और मानसिक वृत्तियों के साथ जन्म लेते हैं। लेकिन ये वृत्तियां बदली जा सकती हैं। और जब वे नुक़सानदेह हों या जब उनमें अपने स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि दूसरों की सेवा के लिए परिवर्तन करने की जरूरत पैदा हो, तब उन्हें बदलना ही चाहिए।

"स्त्री और पुरुष दोनों को चाहे जब भोग से दूर रहने का हक़ है। संभोग पूरी तरह से दोनों की इच्छा का काम होना चाहिए। इसलिए जब दोनों में से कोई एक ज़िंदगी भर के लिए भोग छोड़ देने का निश्चय करे, और यदि पति या पत्नी अपनी विषय-वासना को क़ाबू में न रख सके तो उसे दूसरा साथी खोज लेने की स्वतंत्रता है। लेकिन यह तो तभी हो सकता है, जब विवाह-बंधन में बंधे हुए पति-पत्नी में सच्चा प्रेम न हो, यानी दूसरे शब्दों में, विवाह के सच्चे अर्थ में उनका विवाह ही न हो। विवाह-संबंध तो स्त्री-पुरुष के बीच जीवनभर की मित्रता है। इससे उसमें उन्हें शरीर-संबंध रखने की स्वतंत्रता भले ही हो, लेकिन फिर भी उसमें पशु-वृत्ति की ओर उनकी प्रवृत्ति बढ़ती ही रहती है। जब इस तरह की मित्रता हो, तब राजी-खुशी से शारीरिक तृप्ति न मिले, तो भी उससे लग्न-बंधन नहीं टूटता। इसमें ऊंच-नीच का सवाल ही नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि जो एक के लिए ठीक है, वह सबके लिए ठीक होगा ही। लेकिन मैं इतना तो जानता हूं कि ईश्वर के भक्त के पास पशु-वासनाओं को तृप्त करने का समय ही नहीं रहता और इसलिए इस संबंध में उसका सारा रस मिट जाता है। यदि ब्रह्मचर्य का यही अर्थ करें, तो वह इससे ज्यादा ऊंची स्थिति है।

"विवाह होने देने या उन्हें रोकने का सवाल मेरे या और किसीके भी हाथ में नहीं है। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि पसंदगी के क्षेत्र को सीमित रखने में ही समझदारी है। इसमें अपवाद इतना ही है कि दूसरी

किसी तरह की मित्रता के समान इसमें भी मर्यादा नहीं है। लेकिन इसमें जीवनभर में सिर्फ एक ही मित्र हो सकता है। इसलिए यदि विवाह के क्षेत्र को मर्यादित कर दिया जाय, और वह जाने हुए क्षेत्र में होने पर भी बहुत ही परिचित संबंध में न किया जाय, तो यह शोध ज्यादा आसान होती है और उसमें जोखम भी कम रहता है।

"साधारण तौर से जैन-धर्म में भी आत्मघात को पाप माना जाता है। परंतु जब मनुष्य को आत्मघात और अधोगति के बीच चुनाव करने का प्रसंग आवे, तब यही कहा जा सकता है कि उस हालत में उसके लिए आत्मघात ही कर्त्तव्य रूप है। एक उदाहरण लीजिए। किसी पुरुष में विकार इतना बढ़ जाय कि वह किसी स्त्री की आबरू लेने पर उतारू होजाय और अपने-आपको रोकने में असमर्थ हो, लेकिन यदि उस वक्त उसमें थोड़ी भी बुद्धि जाग्रत हो और वह अपनी स्थूल देह का अंत कर दे, तो वह अपने-आपको इस नरक से बचा सकता है।

"आश्रम में उपवास का कुछ दुरुपयोग जरूर हुआ है, लेकिन उसकी छूत अधिक फैलना संभव नहीं। क्योंकि उसका दुरुपयोग करना आसान नहीं है। भूख बड़ी बलवान होती है।

"यह कभी नहीं हो सकता कि किसी व्यक्ति में अहिंसा का जरूरत से ज्यादा विकास हुआ हो। लेकिन सामान्य जैनों ने अनशन की तरह ही अहिंसा की भी विडंबना कर रखी है। साधारण जैन तो अहिंसा का छिलका ही लेता है और अंदर का गूदा छोड़ देता है। अहिंसा यानी सब जीवों के लिए अनंत प्रेम। और इसलिए उसमें दूसरे को बचाने के लिए अपने जीवन की कुरबानी करने की सदा तैयारी रहनी चाहिए।

"मुझे आशा है कि इससे आपको शांति मिलेगी। लेकिन जबतक सेवा के किसी स्थायी काम में आपको पूरा संतोष न मिले, तबतक सच्ची शांति मिलना संभव नहीं।"

'हरिजन सेवक',
१२-१२-४८

: २७ :

ब्रह्मचर्य द्वारा मातृ-भावना का साक्षात्कार

[ब्रह्मचर्य पालने की इच्छा रखनेवाली एक लड़की को हिंदी में लिखे पत्र का अंश ।]

ब्रह्मचर्य पालने मे सबसे बड़ी चीज मातृ-भावना का साक्षात्कार करना है। हम सब एक पिता के लड़के-लड़किया है। उनमें विवाह कैसे ? खाना केवल औषधि रूप, स्वाद के लिए नहीं। मन को और शरीर को सेवा-कार्य में रोके रखना। सत्यनारायण का मनन करना। बाल कटाने का धर्म स्पष्ट होजाय, तो लोक-लज्जा छोड़कर कटवाना। ईश्वर-भक्ति के लिए नित्य मनुष्य सेवा में लीन रहना। मनोविकार हमारे सच्चे शत्रु हैं, यह समझकर उनसे नित्य युद्ध करना। इसी युद्ध का महाभारत मे वर्णन है।

मंडल के प्राप्य गांधी तथा विनोबा साहित्य

(गांधी-साहित्य)

गांधीजी-लिखित

प्रार्थना-प्रवचन-भाग १	३.००
प्रार्थना-प्रवचन-भाग २	२.५०
गीता-माता	४.००
पन्द्रह अगस्त के बाद	२.००
धर्म-नीति	२.००
मेरे समकालीन	५.००
दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह	३.५०
आत्मकथा (सम्पूर्ण) सजिल्द	४.००
आत्मकथा (सम्पूर्ण) अजिल्द	२.५०
आत्म-संयम	३.००
आत्मकथा (संक्षिप्त)	१.००
अनासक्तियोग	०.७५
अनीति की राह पर	१.००
आज का विचार (दो भाग)	०.७४
आश्रमवासियों से	०.४०
एक सत्यवीर की कथा	०.२५
गांधी-शिक्षा : तीन भाग	०.६२
गीता-बोध	०.५०
ग्राम-सेवा	०.३७
नीति-धर्म	०.३७
ब्रह्मचर्य-भाग १	१.००
ब्रह्मचर्य-भाग २	०.७५
बापू की सीख	०.५०
मंगल-प्रभात	०.३७
सर्वोदय	०.३७
हमारी मांग	१.००
हिन्द-स्वराज्य	०.७५
हृदय-मंथन के पांच दिन	०.३०
देश-सेवकों के संस्मरण	१.२५
अगर मैं डिक्टेटर होता	०.३०
शराबबन्दी करें	०.३०
स्वराज में अछूत कोई नहीं	०.३०
खादी पहनो	०.३०
शिक्षा ऐसी हो	०.३०
कंगाली ऐसे दूर होगी	०.३०
कताई यज्ञ है	०.३०
ग्राम-सेवा यों करें	०.३०
स्त्रियां यह करें	०.३०

अन्य लेखकों द्वारा लिखित

गांधी की कहानी (लुई फिशर)	१.५०
अहिंसा की शक्ति (रिचर्ड बी० ग्रेग)	१.५०
गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ (सं० राधाकृष्णन्)	४.००
गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ (सं० राधाकृष्णन्)	३.००
गांधीजी की छत्रछाया में (घनश्यामदास बिड़ला)	१.५०

जीवन-प्रभात (प्रभुदास गांधी) ५.००
बा, बापू और भाई
(देवदास गांधी) ०.५०
बापू (घनश्यामदास बिड़ला) २.००
डायरी के पन्ने (,,) १.००
बापू के पत्र
(सं० काका कालेलकर) १.२५
बापू के आश्रम में
(हरिभाऊ उपाध्याय) १.२५
गांधी-विचार-दोहन
(कि० मशरूवाला) १.५०
श्रद्धा-कण (वियोगी हरि) ०.७५
गांधीवादी सयोजन के सिद्धात
(श्रीमन्नारायण) ५.००
स्वतन्त्रता की ओर
(ह० उपाध्याय) ४.५०
सर्वोदय की बुनियाद ,, १.००
इंग्लैंड में गांधीजी
(महादेव देसाई) १.२५
बापू की कारावास-कहानी
(सुशिला नैयर) ७.५०
सर्वोदय-योजना ०.५०
विनोबा के जंगम विद्यापीठ में
(कुं० दिवाण) २.५०

विनोबा-साहित्य

ईशावास्यवृत्ति	०.७५
ईशावास्योपनिषद्	०.१२
उपनिषदों का अध्ययन	१.००
गांधीजी को श्रद्धाजलि	०.३७
जीवन और शिक्षण	२.००
भूदान-यज्ञ	०.२५
राजघाट की संनिधि में	०.६२
सर्वोदय-संदेश	१.५०
विचार-पोथी	१.००
विनोबा के विचार (दो भाग)	३.००
शाति-यात्रा	१.५०
स्थितप्रज्ञ-दर्शन	१.००
स्वराज्य-शास्त्र	०.५०
सर्वोदय का घोषणा-पत्र	०.२५
सर्वोदय-विचार	१.१२